निशाने राह

जिस मज़हब व मिल्लत के दुश्मन तब्क़ों की मैंने नक़ाबकुशाई की है उनमें वह इसतिसनाई (Exceptional) अफ़राद शामिल नहीं हैं जो हर फ़िरऔन के दरबार में मोमिने आले फ़िरऔन बनकर ज़िन्दगी गुज़ारते हैं..... और जब हक़ की नुसरत का वक़्त आता है तो हक़ की ख़ातिर आग में जल जाना गवारा करते हैं मगर फ़िरऔन की हमनवाई नहीं करते।

हसन ज़फ़र नक़वी

इन्तेसाब

जनाबे अबुज़रे ग़फ़ारी(रज़ि०)
के नाम

कि जिनका नाम आज भी झूठ व पूँजीवाद के चेहरे पर एक भरपूर ताज़ियाना है और क़यामत तक रहेगा।

किताब का नाम	निशाने राह
लेखक	(मौलाना) सय्यिद हसन ज़फ़र नक़वी साहिब
सम्पादक – (हिन्दी रूपान्तरण)	मु0 र0 आबिद व हैदर अली
प्रकाशन मात्रा	1000
प्रकाशन वर्ष	जून 2005
मुद्रक	निज़ामी प्रेस, लखनऊ
प्रकाशक	नूरे हिदायत फाउण्डेशन, लखनऊ

मिलने का पता

नूरे हिदायत फाउण्डेशन,
इमामबाड़ा गुफ़रान मआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक, लखनऊ 226003 (उ0 प्र0) भारत

फोन न0	मोबाइल
0522–2252230	9335276180
	9415752805

फेहरिस्त

(अ) .....और शुक्रिया ____ 7

मो0 सै0 हसन ज़फ़र नक़वी

(ब) तबसीर (समीक्षण) ____ 11

मौ0 सै0 मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी 'असीफ' जायसी

(स) निशाने राह.....

.....मंज़िल की जानिब एक क़दम____ 17

जनाब आले मुहम्मद रज़मी साहिब

1. क्या किया जाये? _____ 39
2. काम की शुरुआत _____ 61
3. ज़िम्मेदारियाँ _____ 73
4. दीनी मदारिस की इस्लाह _____ 81
5. कालेजों के तलबा की ज़िम्मेदारियाँ___ 89
6. अज़ादाराने इमामे हुसैन (अ0) _____ 101

7. ख़तीबों, ज़ाकिरों, अदीबों
और शोअ्रा–ए–किराम से _____ 115
8. कनीज़ाने सैय्यदा
व ज़ैनब सलामुल्लाहि अलैइहुमा से____ 123
9. मुख़्तलिफ तनज़ीमों के कारकुनों से____ 131
10. निशाने राह _____ 135
11. एक ख़त सबके नाम _____ 139
12. इस्लाम और सेकुलरिज़्म _____ 149
13. जिहादे फातिमा अलैहस्सलाम _____ 159

□□□

.....और शुक्रिया

शुक्रिया अदा करने से पहले ज़रूरी समझता हूँ कि वज्हे तालीफ़ भी बयान करता चलूँ। जिस मौजूअ पर मैंने क़लम उठाया है, यह कोई अछूता या अनोखा मौजूअ नहीं है, बल्कि इससे पहले भी बहुत से अफ़रादे मिल्लत इस मौजूअ पर किताबें, मज़मून और मक़ाले शाए कर चुके हैं। मगर किताबों की मोटाई और मज़ामीन और मक़ालात के मौजूअ के एतेबार से महदूदियत ने मुझे उभारा कि एक ऐसी तहरीर होनी चाहिए जो एक तरफ़ तो मोटाई के हिसाब से उकता देने वाली न हो और दूसरी तरफ़ ऐसे मसाएल का इहाता भी कर ले।

मैं अपनी इस कोशिश में कहाँ तक कामियाब हो सका हूँ इसका फैसला तो पढ़ने वाले ही कर सकेंगे। खुसूसन मेरी अपने जवान दोस्तों से अपील है कि वह इस तहरीर को पढ़ने के बाद मुझे अपनी

राय से ज़रूर आगाह करें। मज़ामीन पाकिस्तान के हालात व वाक़ेआत से मुताअस्सिर होकर लिखे गये हैं मुमकिन है कुछ तहरीरें हिन्दुस्तान के हालात पर भी सादिक़ आयें और कुछ बातें हिन्दुस्तानी मसाएल का भी हल बन जायें। अब सबसे पहले मैं शुक्रिया अदा करता हूँ क़ायदे मिल्लते जाफरिया हुज्जतुल इस्लाम वलमुस्लिमीन मौलाना **सय्यिद कल्बे जवाद नक़वी साहिब** का जिन्होंने हिन्दुस्तान में इल्मी फ़िज़ा साज़गार करने और नश्रे उलूम मुहम्मद व आले मुहम्मद के लिये दो साल क़ब्ल हुसैनिया–ए–हज़रत गुफरान मआब लखनऊ में नूरे हिदायत फाउण्डेशन क़ायम फरमाया जिसने अपने बुक डिपों से अब तक कई मुफ़ीद किताबें और तक़रीबन 15 शुमारे माहनामा ''शुआ–ए–अमल'' के और तीन अदद उलमा के तज़किरे ''ख़ानदाने इज्तेहाद नम्बर'' के नाम से शाए किये हैं।

मैं उन हज़रात का भी शुक्रगुज़ार हूँ जिन्होंने ख़ुतूत के ज़रिये और फोन पर ''शुआ–ए–अमल'' के सम्पादक और उपसम्पादक से मेरे मज़ामीन की तौसीफ फरमाई है और साथी ही उन लोगों का भी

शुक्रगुज़ार हूँ जिनकी ख़्वाहिशात के एहतेराम में मजमु–ए–मक़ालात हिन्दी में शाया हो रहा है।

मेरे लिये बेहद लायक़े शुक्रिया हैं अरकाने नूरे हिदायत फाउण्डेशन ख़ास तौर पर जनाब मु0 रि0 आबिद साहिब जिन्होंने मज़ामीन को देवनागरी (हिन्दी रस्मुलख़त) की सूरत अता की नीज़ मौलाना सय्यिद मुस्तफा हुसैन नक़वी ''असीफ जायसी'', सम्पादक माहनामा ''शुआ–ए–अमल'' और मौलाना हैदर अली साहिब उपसम्पादक ''शुआ–ए–अमल'' जिनकी मसाइ–ए–जमीला से किताब नज़रे क़ारिईन है।

जनाब सै0 सुफयान अहमद नदवी का भी शुक्रिया जिनकी वजह से चन्द दिनों में किताब की कम्पोज़िंग और जनाब सग़ीरुलहसन साहब का भी शुक्रिया (जो मेरी ही क़िस्म के हमवतन हैं) जिनकी फन्कारी ने सरे वरक़ (टाइटिल कवर) को काफी इम्तियाज़ बख़शा।

इनके अलावा भी उन तमाम अहबाब का शुक्रिया जो क़दम बक़दम मेरी हौसला अफज़ाई फरमा रहे हैं। मुझे यक़ीन है कि कुछ लोग शोरो ग़ौग़ा भी

बुलन्द करेंगे उनके लिये सर मुहम्मद इक़बाल का एक ही शेर बहुत है :

हरीफ़ अपना समझ रहे हैं मुझे ख़ुदायाने ख़ानक़ाही
उन्हें ये डर है कि मेरे नालों से शक़ न हो संगे आस्ताना

अहक़रुल इबाद

सै0 हसन ज़फ़र नक़वी

जून 2005 लखनऊ

तबसीर (समीक्षण)

बरादरम मौलाना हसन ज़फर नक़वी साहिब क़िब्ला का तअल्लुक़ हिन्दुस्तान के शोहर–ए–आफ़ाक़ ख़ित्त–ए–मरदुम ख़ैज़ यानि बलदतुल उलमा दारुल उलूम जायस से है और अपने वालिद माजिद की हिजरत के सबब मरकज़े उलूम व फुनून कराची में मएख़ानवाद इक़ामत पज़ीर हैं जो अब मौसूफ के लिये वतन की हैसियत रखता है। आपकी नस्ले मुबारक में हज़रत अबुअबदिल्लाह जाफ़रे सानी बिन इमामे आशिर हज़रत अली नक़ी (अ0) से लेकर अल्लामा मुल्ला नवाब नजमुल मुल्क सय्यिद नजमुद्दीन सब्ज़वारी फातेहे जायस मुतवफ्फा 1027ई0 (अलमदफून बिअरज़ि बनारस) और नवाब नजमुल मुल्क से लेकर मौलाना हसन ज़फ़र साहिब तक शायद ही कोई ऐसी फ़र्द हो जिसका गहरा रिश्ता उलूमो फुनून से न रहा हो और कुछ अफ़राद तो उलमा में भी काफ़ी मुमताज़ हैं मसलन फातेहे जायस सय्यिद नजमुद्दीन, सय्यिदुस्सादात अशरफुल मुल्क

नवाब मुल्ला सय्यिद शरफुद्दीन मुतवफ्फा 425हि0, क़ाज़ी मुल्ला सैय्यद नसीरुद्दीन जायसी फ़ातेहे अव्वले नसीरआबाद, मुल्ला सय्यिद ज़करीया जायसी फ़ातेहे दुव्वुमे नसीरआबाद, मुल्ला सय्यिद इस्मतुल्लाह सद्रुस्सुदूरे देहली, मुल्ला यूसुफ अली उस्तादे बहादुर शाह बादशाह, रईसुलउलमा मौलाना सय्यिद वली मुहम्मद हुसैन जायसी मुजतहिद, सय्यिदुल वाएज़ीन मौलाना सय्यिद कल्बे हुसैन नक़वी मुजतहिद, मौलाना सैय्यद कल्बे आबिद साहिब, आयतुल्लाह सय्यिद कल्बे बाक़िर साहिब, आयतुल्लाह सय्यिद कल्बे महदी, आयतुल्लाह सय्यिद मुहम्मद महदी, आयतुल्लाह अब्दुल महदी, आक़ाए क़ौम कुदवतुल उलमा आयतुल्लाहिल उज़मा सय्यिद आक़ा हसन नक़वी, ज़ाकिरे शामे ग़रीबाँ उमदतुल उलमा सय्यिद कल्बे हुसैन नक़वी, आक़ाए शरीअत सफवतुल उलमा मौलाना सय्यिद कल्बे आबिद साहिब रहमत मआब और अहदे हाज़िर में मुफक्किरे इस्लाम डाक्टर सय्यिद कल्बे सादिक़ साहिब क़िब्ला व क़ाएदे मिल्लते जाफ़रीया हुज्जतुल इस्लाम वलमुस्लिमीन मौलाना सय्यिद कल्बे जवाद नक़वी साहिब क़िब्ला रौनक़ अफरोज़े मसनदे फ़ज़्लो हिदायत हैं।

दादा मरहूम जनाब मौलवी सै0 रिज़ा मुहम्मद नक़वी रिज़ा जायसी शागिर्दे हज़रत मानी जायसी, ने ख़ान बहादुर मौलवी सय्यिद कल्बे अब्बास नक़वी जायसी एडवोकेट के सानेह–ए–इरतेहाल पर जो ताज़ियती मुसद्दस तसनीफ़ फ़रमाया था उस में मशाहीरे जायस के तज़किरे के बाद फरमाते हैं :–

शान मरहूम के घर की भी है अब पेशे निगाह
क्या शरफ़ हक़ ने दिया है इसे अल्ला–अल्लाह
इस्मतुल्लाह सा इस घर का है मूरिस ज़ी जाह
उलमा इसके सदा दीँ के रहे पुश्त पनाह
आज भी चश्म–ए–ख़ैरो बरकत जारी है
इस घराने पे अभी तक करमे बारी है
इस घराने ने दिये दह्र को दो कल्बे हुसैन
एक था मोअजज़ा–ए–सिब्ते रसूलुस्सक़लैन
दूसरा ज़ीनते मिम्बर भी था मस्जिद का भी ज़ैन
ज़ाकिरे शामे ग़रीबाँ दिले ज़हरा का चैन
फज़ले ख़ालिक़ से अजब उसने गुहर पाये हैं
लाल पाये हैं कि दो शम्सो क़मर पाये हैं
न फ़क़त हिन्द तक इस घर की है दुनिया महदूद
इसके अफ़राद का है करबो बला में भी वजूद
था ज़ेबस जज़्ब–ए–ख़ालिस से वहाँ इसका वुरूद
इसको सरकारे हुसैनी ने दिया नामो नमूद
किसी हिन्दी ने जो पायी न वो इज़्ज़त दे दी
भाई के रौज़े की इस घर को इमामत दे दी

हुस्ने इत्तेफाक़ यह है कि आप का जो दादिहाल है वही ननिहाल भी है लेकिन मादरी रिश्ते से आपको एक और अज़ीम शरफ़ हासिल है और वह यह कि आपका सिलसिल–ए–नसबे मादरी बर्रे सग़ीर के अज़ीम मुस्लेह और मुजतहिद आयतुल्लाहिल उज़मा बह्रुल उलूम अल्लामा सैय्यद दिलदार अली जायसी नसीरआबादी गुफ़रान माआब अलैहिर्रहमा मुतवफ़्फ़ा 1235हि0 तक पहुँचता है। जिन्होंने इस्ना अशरी मज़हब हिन्दुस्तान में रायज फरमाया।

शेअ्री मशग़ला भी आपके ख़ानदान का पुराना ज़ौक़ है, चुनानचे सैय्येदुल वाएज़ीन मौलाना सय्यिद कल्बे हुसैन (अव्वल) इब्ने मौलाना वली मुहम्मद हुसैन मुजतहिद का अरबी व फारसी कलाम दस्तयाब है। मौलाना कल्बे आबिद (अव्वल), मौलाना कल्बे रिज़ा और मौलाना कल्बे अस्करी साहेबान भी फारसी और उर्दू में शयरी फरमाते थे मौलाना कल्बे बाक़िर और उनके तीनों बेटे अरबी व फारसी के मशहूर अदीब व शायर थे। मेअ्मारे मिल्लत कुदवतुल उलमा मौलाना आक़ा हसन साहिब और ज़ाकिरे शामे ग़रीबाँ मौलाना सय्यिद कल्बे हुसैन साहिब का फारसी और उर्दू में कलाम मौजूद है।

और मौलाना हसन ज़फर साहिब के दादा मोलवी

सैय्यद कल्बे अहमद 'मानी' जायसी का शुमार तो उर्दू के बड़े शोअरा में होता है। मानी साहिब की तीन अदद ग़ज़लों के मजमूए और एक अदद मजमूअ–ए–क़साएद और दो अदद सलामों के मजमूए मतबूअ होकर अवाम व ख़्वास से ख़िराजे तहसीन हासिल कर चुके हैं। अल्लामा 'मानी' जायसी जितने अच्छे शायर थे उतने ही अच्छे नस्र निगार भी थे। मानी साहिब के फ़रज़न्दे अरजुमन्द यानी मौलाना हसन ज़फर साहब के वालिद माजिद मरहूम सय्यिद इक़बालुज़्ज़फ़र नक़वी साहिब एक अच्छे और कामियाब शाएर थे। मौसूफ़ की ग़ज़लों का एक मजमुआ ''फ़िक्रे आशियाँ'' बन्दे के पास मौजूद है जो मरहूम के इरतेहाल के बाद शाए हुआ है।

मौलाना हसन ज़फ़र साहिब की हयात और अब तक के कारनामों का अगर बग़ौर मुतालआ किया जाये तो बग़ैर किसी ख़ौफ़ के कहा जायेगा कि आप एक मुजाहिद, इंक़िलाब परवर और तारीख़ साज़, मीसमी किरदार रखने वाले, फ़लसफ–ए–मुहम्मद व आले मुहम्मद के आरिफ़ शख़्स हैं। मौलाना के क़ौल व अमल में बेहद इत्तेहाद है, मौसूफ़ की ज़बान की आवाज़ें दिल की सदाएँ होती हैं। आपकी तक़रीरें जहाँ कामियाब व मक़बूल हैं वहीं तहरीरें भी अवाम व ख़वास को बेहद पसन्द हैं।

अब तक मौसूफ़ के छः अदद मजमु–ए–तक़ारीर उर्दू में और एक मक़ालात का मजमूआ ''निशाने राह'' उर्दू में जिसका हिन्दी अनुवाद आपकी ख़िदमत में हाज़िर है और तीन किताबें अंग्रेज़ी में छप चुकी हैं और दो किताबें ज़ेरे तब्आ हैं ज़ेरे नज़र किताब ''निशाने राह'' अस्ल में पाकिस्तानियों के लिये लिखी गयी है लेकिन जो असरी तक़ाज़ों और मिल्ली मसाएल पर मुफीद गुफ़्तगू की गयी है वह सेहतमन्द फ़िक्र रखने वालों के लिये ख़्वाह वह किसी मुल्क के हों फ़ायदे से ख़ाली नहीं हैं बल्कि बन्दा तो जिस मज़मून को पढ़ता है तो लगता ही नहीं है कि यह किसी और मुल्क के मसाएल व वसाएल पर बहेस है बल्कि हमारे मुल्क के मोमिनीन व मुस्लिमीन ही के लिये तहरीर किया गया है। और यही मज़ामीन के आफ़ाक़ी होने की बेहतरीन दलील है।

किताब की सूरत में नूरे हिदायत फाउण्डेशन की यह तीसरी पेशकश है। उम्मीद है कि मोमिनीन निशाने राह को पढ़कर ज़्यादा से ज़्यादा फ़ैज़ हासिल करेंगे।

मुसतफ़ा हुसैन नक़वी 'असीफ़' जायसी

सम्पादक मासिक पत्रिका ''शुआ–ए–अमल''

नूरे हिदायत फाउण्डेशन, लखनऊ–3

निशाने राह.....मंज़िल की जानिब एक क़दम

तारीख़ (History) दर्सगाहे हिकमत इसीलिये है कि वह आईनादारे इबरत है!

पूरी कायनात ख़ुदा की सलतनत है और जिस तरह के सुनन (Traditions) व नवामीस (Norms) इस सलतनत के जमादी, नबाती, हैवानी मौजूदात (Mineral, Flora, fauna) पर हावी हैं इसी तरह इन्सानी ज़िन्दगी भी ख़्वाह वह फ़र्द की हो या समाज की, इसी की तक़दीरात और इसी के ज़वाबित में जकड़ी हुई है। इन बेलाग क़वानीन के तहत कोई पस्माँदा (Backword) और कमज़ोर क़ौम यकायक सर उभारती है और दूसरी तरफ किसी घमण्डी क़ौम का हाल वैसा हो जाता है जेसै क़सरे रफीउश्शान खण्डरों (शानदार महल) में बदल जाये। कोई तहज़ीब उरूज पर आती है और कोई पहले से तसल्लुत

याफ्ता तहज़ीब जड़ बुनियाद उखड़ जाती है। कोई शख़्स बोरिया से उठता है और आलमे इस्लाम के दिल की धड़कन बन जाता है। और किसी दूसरे के सर से कुदरत ताज नोचती है तो सर भी इसी के साथ ज़मीन पर आ गिरता है।

पूरी तरीख़ अज़मतों और इबरतों का एक क़ब्रिस्तान है यहाँ कभी फिरऔन भी था जिसने कहा था 'अनारब्बुकुमल आला' (मैं तुम्हारा बड़ा पालनहार हूँ) यहाँ नमरूद भी गुज़रा है जिसने शाने इस्तेकबार से कहा था 'अना हैय्यु व उमीतु' (मैं जिलाता और मारता हूँ) यहाँ चंगेज़ व हलाकू भी तलवारें लहरा चुके हैं, जिन्होंने शहरों को मक़तल बना दिया था, ख़ून के दरया बहाए, इल्म के चिराग़ गुल किये, इसमतों के गुलशन ताराज किये, यहाँ कभी हिटलर का मुक्का हवा में लहराता था और मसूलीनी की सैय्यादों (शिकारियों) जैसी निगाहें दिल से गुज़र जाया करती थीं।

खुद हमारी तारीख़े इस्लाम में यज़ीद, शिम्र, इब्ने ज़ियाद, हज्जाज बिन यूसुफ जैसे ज़ालिम उमवी व सफ्फाक (क्रूर) अब्बासी हुक्मरान और इब्ने हुबैरा

जैसी खूँख़्वार हस्तियाँ भी गुज़री हैं, फिर क़रीब के दौर में मुस्तफा कमाल पाशा, जमाल अब्दुल नासिर और शहंशाहे ईरान का डंका बजता हमने देखा मगर जब वह कुदरत की दराँती के नीचे आये अपने मुख़ालिफे दीन ज़ालिमाना आमाल की ज़द में आये तो रंग कुछ और हो गया। सरज़मीने पाकिस्तान कैसे फरामोश कर सकती है, गुलाम मुहम्मद, अय्यूब ख़ान और इस क़बील के बहुत से हुकमरानों के अदवार (दौरों) को जबकि इन लोगों के तख़्त हमारे सरों पर बिछे हुए थे लेकिन परवरदिगारे आलम ने उन्हें एज़ाज़ व इकराम के स्टेज से नीचे ढकेल कर पीछे गिरा दिया उनमें कुछ हुकमरान तक़वीमे पारीना (पुरानी स्थापना/पचांग) हो चुके हैं, कुछ दर्से इब्रत के तौर पर पसे दीवार ज़िन्दाँ हैं और कुछ मुल्क से फ़रार हो गये हैं तारीख़ का धारा कभी नहीं रुकता।

गुज़श्ता कई दहाइयों से शीआ क़ौम रद्दो क़दह (वाद–विवाद), पसो पेश, तज़बजुब और मायूसी का शिकार है। मायूसी का मर्ज़ एक ख़तरनाक मर्ज़ है किसी फर्द को लाहिक़ हो (लग जाये) या किसी क़ौम को, लेकिन मोमिन के लिये मायूसी कैंसर का

दर्जा रखती है, कुर्आने करीम में इरशाद हुआ, ईमान वाले तो वही हैं जो अल्लाह और उसके रसूल (स0) पर ईमान लाये। फिर वह किसी शक व तज़बजुब में न पड़े और उन्होंने अल्लाह की राह में माल और अपनी जान से जिहाद किया। यह लोग जो हैं वही (अपने ईमान में) सच्चे हैं (अलहुजरात–15)। यही मौलाना हसन ज़फर नक़वी का तहरीर का बैनुस्सुतूर (आशय) है कि मायूसी क़ौमों के हक़ में नुक़सानदेह साबित होती है। यह ठीक है कि हमारी क़ौमी हालत बज़ाहिर इन्तिहाई बिगड़ी हुई है। ताहम तश्वीशनाक और मायूसकुन हालात में तग़य्युर वा तब्दीली और इसके मुशकिल मसाएल का हल बिलकुल मुमकिन है, इसकी कुन्जी मौजूद है अल्लाह पर भरोसा, इत्तेहाद व नज़्म, सही निशाना, कुर्बानी व रवादारी के ज़रिये कौम पस्ती से बुलन्दी की तरफ़ आ सकती है, बुढ़ापे से जवानी की तरफ पलट सकती है, क़ौमे यूनुस की तरह मौत व हलाकत के गढ़े से निकलकर ज़िन्दगी से हमकिनार हो सकती है। हमारा दिल कितना ही ग़मो अन्दोह से भरा और घुटता रहे, हमारे सीने में हमेशा उम्मीद का समुद्रर मौजें मारते रहना

चाहिये। लेकिन उम्मीद के माने यह नहीं हैं कि हम हालात व हक़ाएक़ से नावाक़िफ रहें या उनको नज़र अन्दाज़ कर दें, शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सर छुपा लें, तल्ख़ और संगीन हक़ीक़तों से निगाहें चार न करें, बचकाना तसल्लियों और ख़ुशफहमियों के सहारे ज़िन्दा रहें, रहज़नों से उम्मीदें बाँधकर उनको अपना रहबर बना लें, तारीख़ और फ़ितरत और क़वानीन से आँखें बन्द करके हर लम्हे यही सुकून लाने वाला राग अलापते रहें कि बस तब्दीली आना ही चाहती है।

तबदीली कहीं बाहर से नहीं ख़ुद हमारे अन्दर से आयेगी, मौलाना सैय्यद हसन ज़फर लिखते हैं :–

> ''मौजूदा हालात ने फिक्र व अमल की सलाहियतों को सल्ब (छीन) कर लिया है। बदतरीन हालात इतनी मोहलत ही नहीं दे रहे हैं कि मिल्लत को इस मुशकिल से निकालने के लिये मन्सूबाबन्दी की जाये, जो काम भी किया जा रहा है वह ऐडहाक और उबूरी बुनियादों पर किया जा रहा है इसलिए मुस्तक़िल और पक्के नतीजे का सवाल ही पैदा नहीं होता।''

मौलाना इसका इलाज यह तजवीज़ करते हैं, हमें कुछ देर के लिये अपने दिल व दिमाग़ को यक्जा और एक तरफ करना होगा। कुछ वक़्त के लिये हालात की दलदल और ख़ुश फहमियों की जन्नत से अपने आपको बाहर निकालना होगा, उबूरी फैसले करने के बजाये बड़े सब्र व तहम्मुल से शुरु ही से अपनी सफ़ें दुरुस्त करनी होंगी।

क़ौम जिन संगीन मसाएल और डरावने ख़तरात से दोचार है और जिस तरह भंवर (VORTEX) में फंसी हुई है इससे इस्तेहकाम, सलामती, बक़ा सब दावँ पर लगे हुए हैं, हर चीज़ के मुस्तक़बिल पर बेयक़ीनी के गहरे बादल छाये हुए हैं। कल क्या होगा, कोई यक़ीन के साथ नहीं कह सकता। कोई संगीन से संगीन बात भी ऐसी नहीं रह गयी जिसका होना नाक़ाबिले तसव्वुर या ख़ारिज अज़ इमकान हो। हमारा क़त्ले आम हो सकता है जैसा कि अफग़ानिस्तान में हुआ। वक़्तन फवक़्तन हमें मौत के घाट उतारा जाये जैसे कि पाकिस्तान में मज़हबी दहशतगर्दी के ज़रिये हो रहा है। हम पर अर्स–ए–हयात तंग कर दिया जाये, हम पर कुफ़्र के

इज्तेमाअी फ़त्वे तो लग ही चुके हैं कहीं ऐसा न हो फिरक़ावारियत के नतीजे में खूँरेज़ी की आग भड़क उठे। हर शोअ्ब–ए–हयात में हमें दीवार से लगाया जा रहा है मगर हम हैं कि हमें एहसास भी नहीं है और सबसे बड़ी मौत यही एहसास की मौत है।

क़ौम की कश्ती यक़ीन के बजाए शक, उम्मीद और हौसले के बजाये नाउम्मदी और डर, इत्तेहाद के बजाए इफ़्तेराक़, दयानत वा वफा के बजाए बददयानती, लूट खसोट और बेवफ़ाई के भंवर में फंसी हुई है। यह तो क़ौमी ज़िन्दगी की मजमूअी कैफ़ियत है अलग–अलग देखें तो कोई शोअ्बा ऐसा नहीं है जिसमें HONESTY OF PURPOSE के तहत PURPOSEFUL काम हो रहा हो। क़ौमी सियासत हो या क़ौम की इक़्तेसादी सूरते हाल, तालीम हो, एख़लाक़ व किरदार हो जिस तरफ देखिये मफाद है, अनापरस्ती है, खुदग़र्ज़ी व हसद है, मुसाबेक़त व बदनज़मी है, इत्तेहाद व तनज़ीम का ख़ात्मा है, क़ायद व क़ौम में फासले हैं, मेहराब व मिम्बर की सजावट है, ख़ुम्स की वसूलियाबी का मुनज़्ज़म निज़ाम ना होने का सबब इसका नाजायज़ इस्तेअ्माल है,

क़ौम में इलाक़ाई, लिसानी और नज़रियाती असबियतें (Fanaticism) परवान चढ़ रही हैं, लालच व हवस ने इन्सान को हैवान बना दिया है, तबक़ाती कशमकश और समाजी ऊँच–नीच बढ़ती जा रही है।

यह और बात लुटेरों के बस में है तक़सीम
वगरना दह्र की हर चीज़ है सभी के लिये

यह सब कुछ इत्तेफाक़ी हादसा नही है यह सूरते हाल एक दिन में पैदा नहीं हुई, बर्रेसग़ीर की तक़सीम के वक़्त ही हमारे मग़रिबी आक़ाओं ने यह STRATEGY मुरत्तब कर ली थी कि मुसलमान हमसे बज़ाहिर आज़ाद होकर भी बातिनी तौर पर हमारी ग़ुलामी का तौक़ अपने गले से न उतार सकें लिहाज़ा उन्होंने मुसलमानों में जो नये फ़िरक़े बनाये थे वह उनके लिये सूदमन्द साबित हुए चुनांचे मुसलमानों में परेशान नज़री व परेशान फिक्री की आबियारी के लिये इन फिरक़ों से अलत्तवातुर लगातार काम लिया जा रहा है।

इसके अलावा C.I.A., मूसाद, K.G.B. और इस क़िस्म की दूसरी एजेंसियाँ भी हमेशा सरगर्म अमल रहें और हो सकता है कि इन एजेंसियों ने

हमारी एजेंसीज़ के लोग भी ख़रीद रखे हों। पाकिस्तान में C.I.A. का अमल दख़ल बहुत ज़ियादा है। इसका अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि 1968ई0 में जर्मनी में DR.MEDARD ने एक छोटी सी किताब WHO IS WHO IN C.I.A. शाए की थी इस किताब में अमरीकी जासूसी निज़ाम के फैलाव की तफसीलात के अलावा उनमें तीन हज़ार C.I.A. एजेन्टों के नाम और मुख़्तसर सवानिही खाके भी दिये गये थे जो कि 120 मुमालिक में काम कर रहे थे। पाकिस्तान में काम करने वाले C.I.A. के एजेन्टों की फेहरिस्त सबसे लम्बी थी जिसे बर्तानिया (Britain) की एक पाकिस्तानी मैग़ज़ीन "PAKISTAN LEFT REVIEW" में भी शाए किया था इसका उर्दू तर्जुमा P.I.A. के मेहनत कशों के तर्जुमान मजल्ला ''मन्शूर'' कराची दिसम्बर 1969ई0 की इशाअत में उन एजेन्टों के नाम और उनके ओहदे के साथ शाए हो चुका है।

इसलिए अमरीकी C.I.A. का सबसे बड़ा निशाना शीआने हैदरे कर्रार हैं। वह समझ चुके हैं कि शीओं की किरदार साज़ी का सरचश्मा मरजिइय्यत है और अज़ादारी उनमें इंक़ेलाबी रूह बेदार करती है इसलिए

मज़हबी जुनूनियों को ख़रीदकर शीओं का क़त्लेआम करवा रहे हैं। हालाँकि देखने में दहशतगर्दी के ख़िलाफ हैं लेकिन पूरी दुनिया के दहशतगर्दों के हक़ीक़ी और सबसे बड़े सरपरस्त यही हैं।

दहशतगर्दी इन्फेरादी (Individual) भी होती है और इज्तेमाअी (Collective) भी। दहशतगर्दी हर मैदान में हो रही है। सियासी दहशतगर्दी, मज़हबी दहशतगर्दी, जराएम पेशा अफ़राद की दहशतगर्दी और इल्मी दहशतगर्दी। दहशतगर्दी ताक़त व कुव्वत के पेट से पैदा होती है, ज़ुल्म व सितम की आबो हवा में परवरिश पाती है, दौलत व लालच की फिज़ाओं में परवान चढ़ती है, बेहयाई व बेग़ैरती के अन्धेरों में आँख ख़ोलती है, ज़ुल्म व संगदिली, तशद्दुद व क़सावत (कठोरता), इस्तेबदाद व हैवानियत के गहवारों में पलती है, शैतानों और दरिन्दों के सीनों से दूध पीकर जवान होती है और अमरीका और दूसरी इस्तेकबारी व साम्राज्यी कुव्वतों के बल बूते पर तरक़्क़ी करती है। दौरे हाज़िर में दहशतगर्दी एक ख़तरनाक वबाई मर्ज़ की शक्ल इख़्तियार कर गयी है जिसने पूरी दुनिया को अपनी लपेट में ले लिया है।

सतहे आब हो, ख़ुश्की या खुली फ़िज़ा हर जगह दहशतगर्दी का राज है। जिन मक़ामात को मुतबर्रिक समझा जाता रहा यानि (मस्जिद हो या मदरसा) और जिन मलबूसात को मुक़द्दस समझा जाता रहा यानि (टोपी, पगड़ी, अमामा व क़बा) अब तो वह भी दहशतगर्दी की पनाहगाह बने हुए हैं कि जिनके तक़द्दुस की गहरी छाप अवाम के दिल व दिमाग़ पर मुद्दतों से लगी हुई है और जिनके तक़द्दुस व पाकीज़गी का दुनिया सदियों से कलमा पढ़ती रही है।

यही तक़द्दुस व पाकीज़गी तो दहशतगर्दी के लिए हिजाब व नक़ाब का काम करती है। दहशतगर्दी इन ही मुक़द्दसात के पीछे छुपी बैठी रहती है। यह तक़द्दुस मॉब अब लोगों को अम्न व भाई चारे के तरग़ीब व तलक़ीन के बजाय दहशतगर्दी की तालीम देते हैं और मदारिस में बच्चों को दीनी तालीम देने के बजाय उन्हें नफरत व असबिय्यत और फिरक़ावारियत की तालीम देते हैं। बी0बी0सी0 ने इस सिलसिले में नमूने के तौर पर एक मदरसे की अक्सबन्दी (Photography) करके दुनिया को हैरत में

डाल दिया कि वहाँ बच्चों को जंजीर में जकड़ रखा हुआ है और उन्हें शबो रोज़ ''काफिर काफिर शीआ काफिर'' का विर्द कराया जाता है और उन बच्चों ने बताया कि हमारे असातेज़ा कहते हैं कि एक शीआ को मारना 70 हज का सवाब है।

ज़ाहिर है कि कोई भी मुतामद्दिन क़ौम (Civilized Nation) या समझदार मुसलमान इसे दहशतगर्दी के अलावा क्या नाम देगा। इन हालात का मौलाना हसन ज़फर नक़वी साहब ने क्या ख़ूब तजज़िया किया है : ''माद्दी ख़्वाहिशात उन्हें शैतानी ताक़तों का हथियार बना देती हैं, मदारिस की इमदाद की आड़में यह कुव्वतें उनमें नुफूज़ (निवेश) पैदा करती हैं, यह माल की चकाचौंध से अन्धे होकर अपनी दीन व ज़मीर दोनों का सौदा कर लेते हैं, माल देने वालों का हथियार बन जाते और इन्सानी बस्तियों की बर्बादी के लिये खून पीने वाले भेड़िये बन जाते हैं।''

एक और जगह लिखते हैं : ''यह दुनिया परस्तों का वह टोला है जो दीन के मुक़द्दस लिबास की आड़ में अपनी ख़्वाहिशाते नफ्सानी की तकमील कर

रहा है और इस फेअ्ल (काम) पर बहुत ख़ुश है कि किस तरह लोगों की आँखों में धूल झोंक रहा है।''

दुश्मन तो हमारे ख़िलाफ पूरी हिकमते अमली, पूरी मन्सूबा बन्दी, पूरी नफरतों और पूरे वसाएल के साथ आमाद–ए–जंग है बल्कि जंग का आग़ाज़ कर चुका है और हम हैं कि वाफिर सुकून और नोटों और मेयारे ज़िन्दगी और आसाईशात को हासिल करने के लिये अपनी औलाद के साथ अपने ईमान, अपने अक़ीदे और अपने फ़रीज़–ए–दावत, अपने जज़्बा–ए–इनफाक़ फी सबीलिल्लाह, अपने दिमाग़, अपनी नमाज़ों, रोज़ों, पर्दे, शर्म, ग़ैरत, रवायात, तहज़ीब, सक़ाफत, इक़तेदार सब माद्दा परस्ती की आग में झोंक रहे हैं जो ज़माने ने हर तरफ भड़का रखी है, रिश्वत, ख़यानत, जाएज़ व नाजाएज़, हराम व हलाल में अब तमीज़ नहीं रही।

हमारी क़ौम में दूसरों की तरह जंग, ज़रगरी व इन्तेशार व इफ्तेराक़ व इख़्तेलाफात का दायरा बढ़ता जा रहा है। होना तो यह चाहिये था कि हम अपनी DEFENCE LINE को मज़बूत करें। लेकिन हम अपनी

क़ौम के नापसन्दीदा अफराद की पगड़ी उछालने में मसरूफ़ हैं। इख़्तेलाफ़ के कुछ आदाब होते हैं। मुहज़्ज़ब अफराद पेशावर बदमाशों जैसा तरीक़ा इख़्तियार नहीं करते। अगर हमें मर्दानगी दिखानी है तो अपने दुश्मन और हरीफों को दिखायें न कि खुद आपस में एक–दूसरे के गिरेबान पकड़ते रहें। अगर हम ख़याल लोगों को इससे आगाह करके उसे उसके हाल पर छोड़ दें तो वक़्त उसे सब कुछ सिखा देगा।

क़ौम की कश्ती भंवर में है .....मगर

शीआ क़ौम की कश्ती भंवर में है। अपनी क़ौमी ज़िन्दगी का सबसे संगीन बोहरान हमारे सामने है यह क़ौम के किसी दाना व बीना शख़्स से पोशीदा नहीं। मौलाना हसन ज़फर नक़वी की ''निशाने राह'' एक दाना व बीना हक़ीम की तदबीर है जिस पर अमल पैरा होकर ईमान व एख़लाक़ की तामीर की जा सकी है। मौलाना ने मर्ज़ के अस्बाब पर भी रोशनी डाली है और इसका इलाज भी बताया है। हमारे क़ौमी बिगाड़ का सबसे पहला सबब तालीम का नाक़िस और दोहरा निज़ाम है। एक तरफ क़ौम

के नाम पर स्कूल खोला जाता है इसके लिये क़ौम के चुने हुए अफराद से DONATION भी लिया जाता है और तलबा से भारी फीस भी ली जाती है। ज़ाहिर है कि इस सूरत में क़ौम के ग़रीब बच्चे न तो उन स्कूलों में भारी फीस दे सकते हैं न ट्राँस्पोर्ट के ख़र्च बर्दाश्त कर सकते हैं न ड्रेस और किताबों के भारी ख़र्च। क़ौम के नाम पर दर्जनों खुले हुए स्कूलों में एक नाम भी ऐसा नहीं है जो शीआ क़ौम के ग़रीब बच्चों के लिये नर्म गोशा रखता हो।

अगर तालीम सही हो और दीनी व दुनियावी तालीम का मेल हो तो एख़लाक़ व किरदार की तामीर की ज़मानत है और क़ौम की उमंगों और मिज़ाज की आइनादार हो तो इस के क़िब्ले को सही रुख़ पर परखने का ज़रिया है। बदक़िसमती से सबसे ज़ियादह बेरुख़ी बल्कि मुजरिमाना बेरुख़ी तालीम से ही बरती गयी है। 35 साल गुज़र जाने के बाद भी शीआ क़ौम अपने तालीमी इदारे न बना सकी और सिर्फ 22 फीसद आबादी पढ़ी–लिखी है।

दीनी मदारिस की सूरतेहाल अफसोसनाक है पूरे पाकिस्तान में एक भी शीआ मदरसा ऐसा नहीं

है जिसे हम दीगर फिरक़ों के किसी अच्छे मदरसे के मुक़ाबले में पेश कर सकें जैसा कि मौलाना हसन ज़फर ने इसकी निशानदही की है। पाकिस्तान में भी एक हौज़–ए–इल्मिया होना चाहिये लेकिन हौज़–ए–इल्मिया तो दरकिनार जो चन्द मदारिस हैं वह बर्बादी का शिकार हैं। बहुत से मदारिस तो अपने बच्चों के लिये खोले गये हैं और ज़ाती मिलकियत हैं।

☐ क़ौमी बोहरान का एक सबब ग़रीबी है और मेयारे ज़िन्दगी की पस्ती है। यक़ीनन फ़ाक़ा, बद्दयानती तक ले जाता है। ग़रीबी का ख़ात्मा ईमान का तक़ाज़ा है, क़ौमी बदहाली से तफरक़ा, झगड़ा और ख़ून–ख़राबे में इज़ाफा हो रहा है।

☐ क़ौम टेक्नालोजी और मआशी तरक़्क़ी के लिहाज़ से पसमाँदा है। काश हमारे उलमा व रोआसा कभी इस बारे में भी ग़ौर फरमाते।

☐ क़ौमी बोहरान का सबसे बड़ा सबब एक बासलाहियत, फअ्आल, मुख़लिस, ग़ैर मुतअस्सब,

दीनदार, बालिग़ नज़र, रौशन फिक्र और जुराअतमन्द क़यादत का न होना।

☐ क़ौमी बोहरान का एक सबब क़ौमी तनज़ीम, तहरीक और तरबियत याफ्ता कारकुनों की कमी भी है।

काश हम सब मिलकर इदारे बनाते। कभी क़ौम के नादारों, बेवाओं, यतीमों, माज़ूरों के बारे में सोचते, कभी उन बच्चों के बारे में सोचते जिनके माँ–बाप उन्हें स्कूल में पढ़ाने की हैसियत नहीं रखते और क़ौम के बहुत से ज़हीन बच्चे वसाएल की कमी की वजह से आला तालीम से महरूम रह जाते हैं। काश क़ौम के प्रोफेसरज़, लेक्चररज़ और उस्ताद कभी इन ग़रीब बच्चों के लिये सोंचते और फ्री टयूशन सेन्टर क़ायम करते ताकि क़ौम के वह बच्चे जो टयूशन फीस न देने के सबब टयूशन नहीं पढ़ सकते और अच्छे ग्रेड से महरूम रह जाते हैं वह भी मैदाने तालीम में वसाएल रखने वालों की औलादों की तरह आगे बढ़ते।

क़ौम के डाक्टरज़ कभी क़ौम के माज़ूरों और

बीमारों पर भी नज़रे करम फरमाते, काश उलमा–ए–किराम, और हम सब उन बच्चियों के बारे में सोंचते जिनके ग़रीब माँ–बाप दहेज़ न दे सकने की वजह से उनकी डोली नहीं उठा सकते, या हम दहेज़ की लानत के ख़िलाफ कोई क़दम उठाते। क्या हमने कभी शोहदा के उन बच्चों के बारे में सोचा कि किस हाल में हैं वह बच्चे, लोरियों के शहज़ादे अपने बाप के प्यार से महरूम हो गये हैं काश हम उन्हें शफक़त से गले लगाते, काश हम पसे दीवारे ज़िन्दाँ क़ौम के उन गुमनाम सिपाहियों और असीरों का ख़याल रखते जिन्होंने क़ौम की इज़्ज़त व नामूस के लिये अपने मुस्तक़बिल को दाँव पर लगा दिया, जिनकी माएँ बेदार और ख़्वाबीदा हालत में उनके क़दमों की आहट महसूस करती हैं और दरे ज़िन्दाँ खुलने के ख़्वाब देखती हैं, जिनकी बहनें सुब्ह व शाम अपने भाईयों की राह तकती है, जिनकी बीवियाँ पथराई हुई आँखों से आती जाती रातों को देखा करती हैं और हर आहट पर यह समझती हैं कि उनकी जुदाईयों के दिन ख़त्म हो गये।

क्या उनके बच्चे उनसे सवाल न करते होंगे कि माँ बाबा कब आयेंगे? क़ौम जवाब दे कि वह दुखी और गमज़दा माँ अपने बच्चे को क्या जवाब दे और कब तक लफ्ज़ों से बहलाती रहे। हमें इन बातों का एहसास इसलिए नहीं है कि हम इस तूफान से नहीं गुज़रे हैं, हम पर यह क़यामत नहीं टूटी है, हम इस परेशानी से दोचार नहीं हुए हैं। लेकिन यह क़यामत कभी और किसी वक़्त किसी पर टूट सकती है। न जाने तक़दीर कब हमें हमारे बच्चों से जुदा कर दे किसी को नहीं मालूम। अगर हम खुद को उस जगह रखकर सोचते तो इतने बेहिस न होते मगर जिस क़ौम में तसव्वुरे क़यामत न हो, एहसास मर जाये, सिला रहमी ख़त्म हो जाये, अपना कोई तालीमी तसव्वुर न हो और कोई तहज़ीबी नक़शा न हो और कोई क़यादत न हो और कोई तरबियत न हो तो उसके यहाँ मैदान खुला है जिसका जी चाहे हमें रोंद डाले, जिसका जी चाहे जिस क़िस्म के ख़यालात व अक़ायद चाहे क़ौम में फैलाये कोई हिसाब करने वाला, रोक टोक करने वाला और मना करने वाला नहीं है।

जहाँ अक़ायद की जंग ज़ोरों पर हो, जहाँ दुनियावी इदारों के साथ–साथ दीनी इदारों में भी खाने पीने का कारोबार शुरु हो जाये, जहाँ मेहराब व मिम्बर में सजावट हो, जहाँ उलमा व ज़ाकिरीन अलग–अलग सबक़ पढ़ा रहे हों, जहाँ एक मन्सूबे के तहत जोहला को दस्तारे फज़ीलत पहनाकर मिम्बरों पर बिठा दिया गया हो बल्कि मुसल्लत कर दिया गया हो, जहाँ मज़हब एक फायदा देने वाला कारोबार हो, अज़ादारी–ए–सैय्यदुश्शोहदा तिजारती इदारा बन जाये, जहाँ क़ौम का MORAL DOWN हो चुका हो, ख़ौफ डर तारी हो, जहाँ कोई किसी का हाल पूछने वाला न हो, एक–दूसरे से बेगाना हो, एक–दूसरे का एहतेराम छोड़ दे, ऐसी ख़स्ता हाल व बेचारगी और जुमूद व जुज़ाम का आलम जहाँ तारी हो वहाँ लोग किसी तहरीक या किसी मुतालबे के लिये कैसे खड़े हो सकते हैं?

मौलाना सैय्यद हसन ज़फर नक़वी की किताब निशाने राह में एक मक़सदियत कारफरमा है उन्होंने बड़े क़ाबिले क़द्र जज़्बे के साथ यह काम अन्जाम

दिया है, जो क़ौमी दर्द रखने वाले, नज़रियाती, साहेबे दिल, साहेबे नज़र, साहेबे तक़वा अफराद और सन्जीदा क़ारी (पाठक) के लिये एक क़ीमती सरमाया है। मौलाना एक सीमाब सिफत, बेचैन और मुज़तरिब रूह के मालिक हैं। इनकी तहरीर में दर्द, दावत, बेक़रारी पायी जाती है। इनके उस्लूबे बयान में सन्जीदगी भी है और दिलकशी व जाज़बियत भी। इन्होंने क़ौम के बेलाग मुबस्सिर का किरदार अन्जाम दिया है और क़ौमी हालात का एक बराबर और ग़ैर जानिबदाराना तजज़िया पेश किया है और सिर्फ तनक़ीद व तबसेरा व तजज़िया पर ही इक्तेफ़ा नहीं किया बल्कि ठोस तजावीज़ भी पेश की हैं। जो मौजूआत मौलाना ने ख़ौफे फसादे ख़ल्क़ की वजह से या भूल कर छोड़ दिये थे मैंने बातचीत के दौरान उनकी निशानदही कर दी है उम्मीद है कि मौलाना आइन्दा भी इस क़िस्म के इन्तिहाई ज़रूरी मौजूआत पर क़लम उठाते रहेंगे। अगर हर शख़्स मसलेहत गज़ीदा या बेहिस हो गया तो हुसैनी किरदार कौन अन्जाम देगा? किसी को तो तौफीक़ हुई कि

इस सहरा में अज़ान दे, किसी ने तो हर्फे हक़ कहा, सलाम उस पर जो हक़ को कुबूल करे।

वस्सलाम

आले मोहम्मद रज़मी

कराची

□□□

क्या किया जाये?

हमारा सफ़र तवील, सब्र आज़मा और थका देने वाला है। हमारे सामने मसाएल का अम्बार है। डरावने और गम्भीर मसाएल, बज़ाहिर ऐसा लगता है जैसे यह मसाएल अचानक ही हमारी क़ौम पर आ पड़े हैं जिसके लिये लोग पहले से तैय्यार न थे और न इन हालात का सामना करने के लिये कोई पेशगी मन्सूबा बन्दी की गयी थी।

लेकिन हक़ीक़त यह है कि इन मुश्किलात और मसाएल की जड़ें कम से कम एक सदी पीछे पेवस्त नज़र आती हैं। होना तो यह चाहिये था कि जब इन मसाएल और मुश्किलात के बीज बोए जा रहे थे और इस्तेअ्मार बड़ी ही होशियारी और चाबुकदस्ती से हिन्दुस्तान की सरज़मीन पर ख़त्म न होने वाली फ़ितने व फ़साद की दाग़बेल डाल रहा था और बुनियादें मज़बूत कर रहा था उसी वक़्त से इस

फ़ितने व फ़साद की जड़ें काटने के लिये मनसूबा बन्दी होनी चाहिये थी मगर अन्जाने तौर पर मज़हबी कुव्वतें साम्राजी अज़ाएम को कामयाब करने का बाअिस बनती चली गयीं।

साम्राज तक़सीम दर तक़सीम के उसूल पर अमल पैरा रहा और यह अमल सिर्फ़ सरहदों की तक़सीम पर नहीं रुका बल्कि तक़सीम शुदा ज़मीनों में, इलाक़ाईयत, लिसानियत और फिरक़ावारियत के रूप में परवान चढ़ता रहा और आज एक मज़बूत और तनावर दरख़्त की सूरत में इस ख़ित्ते पर अपने मनहूस और शैतानी साए की जुल्मतें फ़ैलाता चला जा रहा है और इस सर ज़मीन का कोई भी गली कूचा ऐसा नहीं जहाँ इस शजरे ख़बीसा की कोई शाख़ साया फेगन न हो और इसे अपने आसेब से मुतास्सिर न कर रही हो।

मौजूदा हालात ने फिक्र व अमल की सलाहियतों को सल्ब कर लिया है, बदतरीन हालात इतनी मोहलत ही नहीं दे रहे कि मिल्लत को इस बोहरान से निकालने के लिये मन्सूबाबन्दी की जाये, जो काम भी किया जा रहा है वह एडहाक और उबूरी बुनियादों

पर किया जा रहा है, लिहाज़ा मुस्तक़िल व पाएदार नतीजे का सवाल ही पैदा नहीं होता।

हमें कुछ देर के लिये अपने दिल व दिमाग़ को यकजा और यकसू करना होगा, कुछ वक़्त के लिये हालात की दलदल और खुश फहमियों की जन्नत से अपने आपको बाहर निकालना होगा, उबूरी फैसले करने के बजाय बड़े सब्र व तहम्मुलसे फिर से अपनी सफें दुरुस्त करनी होंगी बल्कि यह मान कर कि सफें हैं ही नहीं अपने सामने एक सिफ़र लगाना होगा। यह बड़ी आज़माईश का वक़्त है सुब्हो शाम बदलते हालात हमें मसाएल में कूद जाने के लिये पुकारेंगे। लोगों की फ़रियादें हमें अपनी तरफ मुतवज्जेह करेंगी। लेकिन हमें यह तस्लीम करना पड़ेगा कि हम न सिर्फ यह कि एक मुनतशिर मुआशरे की कोई मदद नहीं कर सकते बल्कि इन हालात में कूद कर कुछ कर सकने की सलाहिय्यत से भी महरूम हो सकते हैं।

इसकी तश्रीह की ज़रूरत है। क़ौमें चन्द सालों में बनती या बिगड़ती नहीं हैं। तारीख़े अक़वाम यही बताती है कि यह सदियों का अमल है। सैंकड़ों साल

ज़ुल्म व सितम की चक्की में पिसने वाली क़ौम आख़िरकार Survive करती है और आख़िरकार एक क़ुव्वत की सूरत में उभरती है। सदियों तक दुनिया के बड़े हिस्से पर हुक्मरानी करने वाली क़ौमें आख़िरकार तारीख़ के पहिय्ये में आकर ज़वाल का शिकार हो जाती हैं। किसी ख़ास क़ौम की मिसाल देने की ज़रूरत नहीं तारीख़ के सफहात पर बेशुमार मिसालें नक़्श हैं।

हमारे एक गिरोह को आख़िरकार यह ज़िम्मेदारी लेना पड़ेगी कि वह बज़ाहिर अपने ऊपर बेहिसी तारी कर ले और किसी भी तरह हालात के मौजूदा धारे से अपने आपको बाहर निकाले और अपने लिये एक पनाहगाह तलाश कर ले। यह पनाहगाह अपनी जानें बचाने के लिये नहीं बल्कि आईन्दा नसलों के मुस्तक़बिल को महफूज़ करने के लिये ''ग़ारे हिरा'' का काम दे।

ऐसी ही एक पनाह सबसे पहले अब्दुल मुत्तलिब (अ0) ने फितने व फसाद से दूरी इख़्तियार करके हासिल की और इस फिक्री पनाहगाह में बरसों तक अपनी क़ौम की हालत पर अफसोस करने के

साथ–साथ दिल व दिमाग़ के दरीचे खोलकर क़ौम के मुस्तक़बिल के बारे में सोचते रहते थे। यह फिक्रे अब्दुल मुत्तलिब सिर्फ ग़ार तक महदूद न रही बल्कि जब यह ग़ार से बाहर निकली तो अब्दुल मुत्तलिब अपने बेटों पर मुशतमिल एक छोटा सा तरबियत पाया गिरोह तशकील देने में कामयाब हो गये जो आने वाले कल में अबुतालिब, अब्बास, हमज़ह, और अब्दुल्लाह और उनकी औलादों की सूरत में नक़ीबे इन्क़ेलाब को कुव्वत फराहम करेंगे और बरसों पर मुहीत अब्दुल मुत्तलिब (अ0) और अबुतालिब (अ0) की ज़हमतें रंग लाकर रहेंगी और जब वह नजात दहिनद–ए–बशरिय्यत (यानि इन्सानियत को जुल्मो सितम से छुटकारा देने वाला) फितना व फसाद के शजरे ख़बीसा की जड़ों पर हमला करेगा तो परवरदिगार उसे हैदरे कर्रार (अ0) की शक्ल में अपने ज़ैग़म (शेर) की नेअ्मत अता करेगा।

अल्लाह की मदद हासिल करने के लिये ज़रूरी है कि पहले ख़ुद कुछ इक़दामात किये जाएँ, पहले ख़ुद अपने हालात बदलने के लिये क़दम बढ़ाये जाएँ। लेकिन यह बहुत ज़रूरी है कि यह ग़ौर व

फ़िक्र करने वाला गिरोह ग़ारे हिरा तलाश करने वाला गिरोह, मख़लूक़े ख़ुदा की मुहब्बत से सरशार हो, ख़ुदा की रस्सी को मज़बूती से थामे हुए हो, इश्क़े रसूल में डूबा हुआ और मैख़ान–ए–कर्बला का जाम पिये हुए हो जिसका कभी न उतरने वाला ख़ुमार उसे जाद–ए–हक़ (सीधा रास्ता) पर गामज़न रखने के लिये ज़रूरी है।

ऐसे अफराद की तलाश और उन्हें यकजा करना सबसे मुश्किल मरहला है मगर नामुमकिन नहीं। ऐसे अफ़राद किसी ख़ास तबक़े में नहीं बल्कि हर तबक़े में मौजूद हैं और उनका हर तबक़े में होना ज़रूरी है। माज़ी की कड़वाहट यह बताती है कि मुख़तलिफ तबक़ात को नज़र अन्दाज़ करने के लिये भयानक नतीजे सामने आये।

दानिश्वर (बुद्धजीवी) तबक़ा किसी भी क़ौम के इरतेक़ा में रीढ़ की हड्डी की हैसियत रखता है, अदीब, शाएर, डाक्टर, क़ानूनदाँ, मुअल्लिम फ़लसफ़ी वग़ैरह यह सब मिलकर किसी मुआशरे और क़ौम की तश्कील और तरक़्क़ी में अहम तरीन किरदार अदा करते हैं। लेकिन ज़रा पिछली आधी सदी पर नज़र

डालिये तो आपको नज़र आयेगा कि उनकी फिक्री सलाहियतों को मिल्लत की तामीर के बजाये सरबराहाने वक़्त की ख़िदमात के लिये वक़्फ कर दिया गया और जो अपने ज़मीर का सौदा करने पर तैय्यार न हों इसकी आवाज़ उसके गले ही में घोंट दी गयी या इतनी कमी कर दी गयी कि ख़ुद उसे भी अपनी आवाज़ अजनबी महसूस होने लगी।

आग़ाज़ कैसे किया जाये?

मसाएल की निशानदही बहुत आसान मगर उनका क़ाबिले अमल हल पेश करना बड़ा मुशकिल काम है। इस ज़िम्न में पहली बात यह है कि जब तक हम मसाएल की जड़ को न तलाश कर लें हम उन पर क़ाबू पाने का तसव्वुर भी नहीं कर सकते। जब तक अपने दुश्मन की पहचान न हासिल कर लें उसे शिकस्त देने का ख़याल भी अहमक़ाना है। हमारा अस्ल दुश्मन वह नहीं होता जो हम पर गोली चलाता है या हमारी बस्तियों को तबाह करता है बल्कि अस्ल दुश्मन वह होता है जो उससे गोली चलवा रहा होता है और आग लगवा रहा होता है।

दुश्मन की पहचानः-

बस जिद्दोजोह्द (भरपूर कोशिश) की राह पर क़दम बढ़ाने से पहले हमारे लिये दुश्मन को पहचानना और इसके मुताल्लिक़ तमाम मालूमात का हासिल करना ज़रूरी है, सामने आने वाले हालात में इन्सानियत को जहन्नुम की तरफ ढकेलने वाले शैतान के यह आल–ए–कार तह दर तह पर्दों और नक़ाबों के पीछे छुपकर बैठ गये हैं। हमारे मुआशरे को जहन्नुम के दहाने तक पहुँचाने के लिये सामराज ने कुछ शैतानों को हम पर मुसल्लत किया और ज़ुल्म तो यह है कि इन साँपों बल्कि अज़दहों को हमारे हाथों ही दूध पिलवाया और बज़ाहिर हम ख़ुद ही उनके ताक़तवर और आग बरसाने वाले अज़दहे बनाने का ज़रिया बने।

पहला भूतः- फिरऔनियत के वारिस जागीरदार, जो ज़मीन पर ख़ुदाई के दावेदार बनकर अपने आपको इन्सानियत के दायरे से ख़ारिज करना और इन्सानों को ग़ुलामी की ज़ंजीरों में जकड़ना अपना हक़ समझते हैं, ज़मीन जितना भी सोना उगले वह

उनकी मिलकियत और उनके शहज़ादों और शहज़ादियों के रोज़ो शब को रंगीन तर बनाने के लिये या फिर ऐवाने इक़्तेदार की गुलाम गर्दिशों को साफ़ रखने के लिये वक़्फ़ है ताकि उनकी जागीरों पर रेंगने वाले कीड़े–मकोड़ों पर जिनके खून पसीने से यह ज़मीन सोना उगलती है अपने रोब व जलाल का सिक्का बिठाया जा सके और जब यह फिरऔन एलान करें कि ''अना रब्बुकुमुल अअ्ला'' तो यह कीड़ी–मकोड़े नुमा मख़लूक़ उनके सामने सिजदे में चली जाये।

यह जागीरदार अस्ल में सामराज की गुलामी के सिले में हासिल की हुई जागीरों के मालिक ही नहीं बल्कि उसके तमाम शैतानी हथकंडों के वारिस भी हैं। यक़ीनन इनमें कुछ अफ़राद अपने ही सिस्टम के बाग़ी होते हैं मगर या तो वह गुमनामी में ज़िन्दगी बसर कर देते हैं या फिर अपने ही ख़ानदान के अफ़राद के हाथों मौत की नींद सुला दिये जाते हैं क्योंकि अपनी जागीरदारी की हिफाज़त करने वाले अपने सिस्टम के लिये कोई ख़तरा बर्दाश्त नहीं कर सकते, चाहे वह खूनी रिश्ता ही क्यों न हो।

दूसरा भूतः- हामानी ब्युरोक्रेसी जो अल्लाह की मख़लूक़ पर फिरऔनों को मुसल्लत करने की ज़िम्मेदार है। फिरऔन बदलते रहते हैं मगर यह अपनी जगह मज़बूती से क़ायम रहते हैं। इन्हें अपने आपको मज़बूत रखने का फ़न आता है। हुकमरानों के लिये ज़िन्दाबाद और उनकी मुख़ालिफत करने वालों के लिये मुर्दाबाद के नारे लगाने वाले सादा अवाम यह नहीं जानते कि अवाम का खून चूसने वाले शैतान अस्ल में ब्युरोक्रेसी है जो हुकमरानों को यह याद दिलाती है कि उनसे ज़ियादह हुकूमत का वफ़ादार कोई नहीं है। इसी खूँखार ब्युरोक्रेसी की सामराज नवाज़ पालीसियों पर हुकमरान अमल करते हुए बेचारे और बेबस अवाम पर क़हर ढाते हैं। दूसरी तरफ यह ब्युरोक्रेसी अवाम के सामने मज़लूम बन जाते हैं कि वह कुसूरवार नहीं हैं बल्कि वह तो हुकमरानों के अहकाम लागू कर रहे हैं।

करप्शन (बुराई) फैलाने में सबसे ज़ियादह हाथ इसी ब्युरोक्रेसी का होता है। ग़ैर मुल्की क़र्ज़े लेने और हड़प करने के माहिर यह लोग जब तक हुकमरान तबक़े में करप्शन पैदा न करें उस वक़्त तक यह

खुद अपने ख़ज़ानों को नहीं बढ़ा सकते। इसलिए पहले यह ख़ुद ही हुकमरान ख़ानदान और वज़ीरों, मुशाीरों को करप्शन के रास्ते सुझाते हैं।

लेकिन सवाल यह है कि यह ऐसा क्यों करते हैं? इसकी चन्द वजूहात हैं :– पहली वजह तो वह शैतानी निज़ाम (सिस्टम) है जो सामराज हमारे सर थोपा गया है। इस निज़ाम में ब्युरोक्रेसी उन ही की तरबियत पायी हुई, उन ही के लाइनों पर तरबियत लेने वाली है जो अपनी सरज़मीन और अपनी क़ौम से ज़ियादह अपना नाता अंग्रेज़ों से जोड़ने को फ़ख़ जानती है, उनका रहन–सहन, उठना–बैठना, बच्चों की अंग्रेज़ आयाओं की गोद में तरबियत, छुट्टियाँ यूरोप के हसीन साहिलों पर गुज़ारना, मुसीबत में मुल्क छोड़कर फ़रार होने के लिये हर वक़्त एक पैर से तैयार रहना। दूसरी वजह बेदीनी है यह उनकी तरबियत की ख़ुसूसियत है कि उनका कोई दीन नही होता, उनका दीन, मज़हब, अक़ीदा सब उनकी कुर्सी और उनका फ़ायदा होता है इसीलिये यह अपने मुल्क के बजाये इस्तेअ्मारी (साम्राजी) ताक़तों के फ़ायदे की हिफाज़त करते हैं। सुबूत

यह है कि अपने अवाम का ख़ून पानी की तरह बह जाये, उन पर कोई असर नहीं होता लेकिन अगर उनके आक़ाओं मसलन अमरीका या ब्रेटेन के सिफ़ारतख़ानों या उनके मुलाज़िमों को कोई झूठी धमकी भी दी जाये तो फिर आप उनकी फिक्रमन्दी और परेशानी देखिये। अस्ल में यह उन ही मुल्कों के सिफ़ारतख़ानों के वफ़ादार और नमक खाने वाले हैं।

यक़ीनन उनमें कुछ ही लोग मिल जायेंगे जो निहायत ख़ुलूस और ख़िदमत के जज़्बे के साथ और इस निज़ाम को बदल देने के आरजू के साथ तरबियत ले कर इस सिस्टम में दाख़िल होते हैं लेकिन उन्हें जल्द ही अन्दाज़ा हो जाता है कि वह किस शैतानी चक्कर में आ चुके हैं। मगर ऐसे सच्चे लोगों की तादाद इतनी होगी जितनी पुलिस के महक्मे में ईमानदार अफ़राद की बल्कि शायद पुलिस में ज़ियादा फ़र्ज़ शिनास अफ़राद मिल जायेंगे मगर ब्युरोक्रेसी जो तह दर तह पर्दों में छुपकर काम करती है उनमें यह तादाद शायद इससे भी कम हो।

तीसरा भूतः-

जुर्म करने वाले सियासतदान (नेता)

स्मगलरों, चोरों, डाकुओं, क़ातिलों और लुटेरे सरमायादारों की बेहतरीन पनाहगाह सियासी जमातें हैं। पहले यह होता था कि यह जुर्म करने वाले लोग सियासी लोग और सियासी जमातों को पैसा देते थे ताकि बुरे वक़्त में यह सियासी जमातें उनकी सरपरस्ती करें या हुकूमत में आकर उन्हें लूट–मार करने में मज़ीद आसानियाँ फराहम करें मगर अब यह सारे जुर्म करने वाले अफराद खुद ही सियासतदानों के रूप में आकर सियासी जमातों में शामिल होकर या नयी सियासी जमातों को बनाकर अपने मुजरिमाना कारोबार को महफूज़ कर लेते हैं। इसकी ज़ियादह वज़ाहत की ज़रूरत नहीं है, हेरोइन का कारोबार हो या हथियारों का टेक्स चोरी और कस्टम ड्युटी बचाने का मसला हो या बैंकों में क़र्ज़ हड़प करने का, एजेंसियों के हुसूल का मसला हो या बड़े–बड़े ठेकों का सब जगह इनका राज है और पूरे मुल्क में हर हर हिस्से में इनका शैतानी नाच जारी है।

वक़्ती तौर पर ही सही लेकिन जब एक चोरों का टोला जाती है और दूसरा चोरों का गिरोह उसकी जगह सम्भाल लेता है तो पिछले वालों के कारनामे ज़रूर सामने आते हैं और कभी–कभी तो ऐसा भी होता है कि यह सारे चोर किसी आपसी फायदे पर एक आवाज़ हो जाते हैं ऐसी एक मिसाल बेनज़ीर भुट्टो के दौर में उस वक़्त सामने आयी जब ड्युटी फ्री लक्ज़री कारों का मामला हुआ। तमाम पारलियामेण्ट के मेम्बरों को यह सहूलत दी गयी कि वह लक्ज़री कार बिना ड्युटी अदा किये हासिल कर सकते हैं। इस कार की सिर्फ ड्यूटी लाखों रुपये बनती थी तो फिर अन्दाज़ा किया जा सकता है कि वह कार क्या होगी? इस मसअले पर वह अरकाने असेम्बली के मेम्बर भी जो सुब्हो शाम असेम्बली में बेनज़ीर हुकूमत के ख़िलाफ उधम मचाते रहते थे और अवाम की बदहाली का रोना रोते थे, वह भी खुश दिली के साथ राज़ी हो गये और सबने चुप–चाप इस सहूलत को पी लिया।

क्या सियासी नुमाइन्दे और क्या मज़हब के ठेकेदार अपने फायदे हासिल करने के लिये सारा

अवामी ग़म भुला बैठे, वह तो भला हो कुछ सहाफ़ियों का जिन्होंने अख़बारों में इस केस को उछाला और इस तरह असेम्बली के मेम्बरों का हक़ीक़ी चेहरा सामने आया। ख़ैर होना क्या था! दो चार दिन शोर मचा फिर वही ख़ामोशी और बेहिसी। जिस मुल्क के सियासी रहनुमाओं की हेरोइन की फैक्ट्रियाँ और मज़हबी रहनुमाओं का आग के हथियारों का कारोबार हो, आप क्या समझते हैं वहाँ सियासी तरबियत और इस्लामी तरबियत का कोई इमकान है, क़तअन नहीं।

यहाँ भी कुछ सच्चे और शरीफ लोगों को अलग गिरोह में रखना पड़ेगा मगर इस शैतानी निज़ाम में इनसे किसी मोजेज़े की उम्मीद बेकार है।

चौथा भूतः- इस्लाम से बेख़बर इस्लाम के ठेकेदार मुल्ला।

जहाँ तारीख़े इस्लाम नबियों के वारिसों यानी उलमा–ए–हक़ की कुर्बानियों से पुर है और उनके पाक खून से मुनव्वर है, वहीं हर दौर में उलमा का चोला ओढ़कर इस्लाम पर अन्धेरे में चुपके से हमला करने वाले कुछ मुल्लाओं का भी बड़ा हाथ है जो

किसी ख़ास मकतब के नहीं बल्कि हर मकतबे फिक्र में मौजूद रहे हैं और इस तहरीर में मेरा इशारा उन्ही दीन फरोशों की तरफ है न कि उन उलमा–ए–हक़ की तरफ जो इस्लाम की पेशानी का जगमगाता हुआ झूमर हैं और जिनके क़लम की रोशनाई शोहदा के खून से अफज़ल है। लेकिन इन दूसरी क़िस्म के कुछ मुल्लाओं के ख़िलाफ भी बात करना उनके ख़िलाफ क़लम उठाना उनके नापसन्द चेहरे से नक़ाब हटाना, अपने को मुसीबत में डालने की तरह है।

अगर लोगों के सामने इनका हक़ीक़ी रूप पेश करने के बदले सर देना पड़ता तो सौदा महंगा नही है। इन जाली मुल्लाओं में और कुर्आन करीम में पेश किये जाने वाले यहूद व नसारा (ईसाइयों) के पादरियों और राहिबों में कोई फ़र्क़ नहीं है, यह भी आयाते इलाही का सौदा बड़े सस्ते दामों में करते हैं। दीन की तरफ मुड़ने के बजाय दीन को अपनी तरफ मोड़ते हैं। यह जिस इस्लाम के दावेदार है उसमें सलामती ही नहीं है बाक़ी सब कुछ है।

यह जो इस्लाम दुनिया के सामने पेश कर रहे हैं इसका पैग़म्बर(स0) के इस्लाम से दूर का भी

वास्ता नहीं। पैग़म्बरे अकरम ने इस्लाम फैलाया, यह मसलक फैलाते हैं, मुनज्जीये बशरिय्यत ने जाहिल, झगड़ालू और वहशी लोगों को इन्सान बनाया और यह इन्सानों को वापस जिहालत, झगड़े और वहशत व जुल्म के रास्ते पर लिये जा रहे हैं। रसूल (स0) बदतरीन दुश्मनों पर भी क़ाबू पाने के बाद रोज़े फत्हे मक्का शहर में रहमत और शफक़त बनकर दाख़िल होता है, यह जहाँ जाते हैं खून–ख़राबा और बरबादी की दास्तानें लिख डालते हैं। रसूले अरबी (स0) मस्जिदों को कामियाबी की दावत देने के लिये तामीर कराया, यह क़त्ल व ग़ारतगरी की दावत के लिये इस्तेमाल करते हैं। यह अपने मज़हबी मक़ाम को समाज में मुहब्बत की मिठास फैलाने के बजाये ज़हर फैलाने के लिये इस्तेमाल करते हैं। यह वह ज़हरीले इन्सान हैं जिनसे साँप, बिच्छू भी पनाह माँगते हैं। लोगों को तक़वे और परहेज़गारी का सबक़ देने वाले यह लोग खुद माद्दा परस्ती और दिली ख़्वाहिशों की पैरवी में सब लोगों से आगे हैं।

मसाजिद पर क़ब्ज़े का मसला हो या मदारिस की आड़ में ज़मीन घेरने का मामला यह उन जुर्म

पेशा सियासत दानों से भी चार हाथ आगे हैं। क्योंकि सियातसदाँ जो कुछ करते हैं दीन की आड़ में नहीं करते मगर यह दीन के ठेकेदार वही सारे काम दीन का चोला ओढ़कर अन्जाम देते हैं और अवाम को उलमा–ए–बाअमल से भी दूर कर देते हैं।

लोगों को ख़ुम्स व ज़कात के मामले में खुदा से डराने वाले यह लोग कितनी आज़ादी से ख़ुम्स व ज़कात हड़प कर जाते है वह इनके और इनकी औलाद के रहन–सहन से दिखता है। सरमायादारों के लिये मसनद बिछाते हैं, जागीदारों के खुशामदी और चापलूस सेठों के सामने हाथ जोड़े और अगर कोई ज़रूरतमन्द मिस्कीन मोहताज भूले से इनके दरवाज़े पर चला जाये तो फिर देखिये उस ग़रीब की कितनी तौहीन होती हे।

यही माद्दी ख़्वाहिशात उन्हें शैतानी ताक़तों का हाथ बना देती हैं। मदारिस की माली इमदाद की आड़ में यह ताक़तें उनमें घुसती हैं। यह माल की चकाचौंध से अन्धे होकर अपने दीन व ज़मीर दोनों का सौदा कर लेते हैं, माल देने वालों के हाथ बन

जाते हैं और इन्सानी बस्तियों की बरबादी के लिये खून पीने वाले भेड़िये बन जाते हैं। और ऐसे में लोगों को यह समझना मुश्किल हो जाता है कि सही और ग़लत उलमा को कैसे पहचानें?

हमारे मकतब में तो खुदा का शुक्र है कि सूरते हाल बहुत बेहतर है मगर दूसरी जगहों पर तो यह आलम है कि ग़रीब, भूखे और ग़रीबी के सताये हुए माँ–बाप अपने जिगर के टुकड़े इनके हवाले कर देते हैं कि कम से कम भूखे तो नहीं मरेंगे। समाज के ठुकराये हुए यह बच्चे ख़ैरात और सदक़े के माल पर परवान चढ़ने वाले यही मासूम बच्चे जब हर जुमेरात अपने ठेकेदार, मदरसे के मालिक मुल्ला के हुक्म पर मोहल्ले के घर–घर जाकर खाना माँग रहे होते हैं तो उस वक़्त से उनके ज़ेहन में इस समाज से इन्तेक़ाम लेने का लावा पकना शुरु हो जाता है। (यह मैं नहीं कह रहा बल्कि बैनुलअक़वामी मीडिया ने भी इनकी यही तस्वीर दिखायी है)

एहसासे कमतरी (Inferiority Complex) के शिकार यह मासूम बच्चे अचानक वह्शी दरिन्दों में तबदील हो जाते हैं और जिन दरवाज़ों पर उन्हें

एक–एक वक़्त की रोटी के लिये जाना पड़ता था, उन दरवाज़ों में जनाज़े रखवा देते हैं, उन घरों में सफे मातम बिछवा देते हैं। (खुदा का शुक्र है कि हमारे मदरसे कम से कम इस मामले में दूसरे मकातिब से बहुत अच्छे हैं।)

याद रहे कि मैं हर मकतब के, इस्लाम को न समझने वाले मुल्लाओं की बात कर रहा हूँ उन उलमा की बात नहीं कर रहा जो दूसरों का खून बहाने के बजाय अपने ही खूने जिगर को रोशनाई बनाकर हक़ीक़ी इस्लाम की तारीख़ लिखते हैं और हर दौर में सामराज और उसके बहाव के लिये चैलेन्ज बन जाते हैं, न दीन का सौदा करते है। न दीन का सौदा करते हैं न ज़मीर का, जिन्होंने जवानों को अपने मक़ासिद की तरह भेंट चढ़ाने के बजाए ख़ुद सूली पर चढ़ना गवारा कर लिया।

पिछली एक सदी का मुताला करें तो आपको जमाल उद्दीन अफग़ानी से लेकर लेबनान के अब्बास मूसवी तक मुक़ाबला करने वाले उलमा की एक तवील फेहरिस्त मिल जायेगी जो अपनी सलीब अपने कांधों पर उठाये–उठाये आख़िरी साँस तक सामराज

का मुक़ाबला करते रहे। लेकिन इन मुजाहिद उलमा को भी इनके मक़ासिद हासिल करने के दौरान उनके ख़्वाब को सच साबित करने से रोकने में जहाँ सामराजी ताक़तों का हाथ था। वहीं इन इस्लाम के न समझने वाले और फिरक़ा परस्त मुल्लाओं का भी हाथ था। जो सामराज को भी खुदाई ताक़त क़रार देने से नहीं चूकते थे और उन्हें हाकिम क़रार देकर उनकी इताअत को वाजिब बताते थे। तारीख़े हिन्द के मुताले के दौरान आपको कुछ मकातिब के उलमा के ऐसे फतवे मिल जायेंगे जिनमें उन्होंने अंग्रेज़ साम्राज के ख़िलाफ ख़ड़े होने को हराम क़रार दिया था।

अगर आरिफ हुसैनी (रह0) और उनके मिस्ल उलमा ने जामे शहादत नोश किया तो इसलिए कि इस्लाम के नासमझ मुल्लाओं की एक बड़ी तादाद ने अपने अमल के ज़रिये इस्तेअ्मार और इसके आलाकारों को यक़ीन दिलाया था कि हम आरिफ हुसैनी (रह0) की मीरास को इस तरह लूटेंगे कि आइन्दा तवील अर्से तक आरिफ हुसैनियों का रास्ता बन्द हो जायेगा।

जवानों को याद रखना चाहिए कि उनके लिये नमून–ए–अमल अरिफ हुसैनी (रह0) और उनके जैसे उलमा होने चाहियें। उन्हें फ़िरक़ावारियत फैलाने वाले कुछ दीन फरोश और ज़मीर फरोश मुल्लाओं की हरकतों से मायूस होने की ज़रूरत नही है। यह दुनिया परस्तों का वह टोला है जो दीन के मुक़द्दस लिबास की आड़ में अपनी ख़्वाहिशात नफ्सानी को पूरा कर रहा है और इस काम पर बहुत ख़ुश है कि किस तरह लोगों की आँखों में धूल झोंक रहा है। मुक़द्दस और मुतबर्रिक नामों पर ''सिपाह'' और ''जैश'' तरतीब दिये जा रहे हैं ताकि इस्लाम के नाम पर ही मुसलमानों के ख़ून से होली खेली जाये।

□□□

काम की शुरुआत

पिछले सफहों में उन चार भूतों की पहचान करायी गयी जो तारीख़ी तौर पर तो क़दीम हैं मगर साम्राज ने उन्हें जदीद लाइनों पर मुनज़्ज़म करके हमारे समाज पर इस तरह मुसल्लत कर दिया है जैसे आक्टोपस (आठ हाथ वाला समन्दर जानवर) समन्दर की कमज़ोर मख़लूक़ को जकड़ कर बेबस कर देता है।

इन्सानियत के यह दुश्मन इससे कहीं ज़ियादा ख़तरनाक, ज़हरीले, खून पीने वाले और मज़बूत हैं जितना पिछली सतरों में बयान किया गया है बस इनसे मुक़ाबले के लिये भी एक तवील और मुनज़्ज़म जद्दोजेहद की ज़रूरत है।

इस मौक़े पर यह याद दिलाना ज़रूरी है कि जुल्म की जड़ें काटने के लिये कभी भी जुल्म का हथियार इस्तेमाल नहीं किया जा सकता क्योंकि

इसका नतीजा एक जुल्म के बाद दूसरे जुल्म के दौर का आग़ाज़ होगा, बल्कि जुल्म को मिटाने के लिये मज़लूमियत ही के हथियार को इस्तेमाल करना पड़ेगा और यह बात तय है कि ज़ालिम के हाथों जुल्म की चक्की में पिसने वाले अफराद की तादाद कहीं ज़ियादा बल्कि बहुत ज़ियादा है। दूसरी बात यह है कि ज़ालिम बुनियादी तौर पर बुज़दिल होता है।

हमारा पहला काम यह होना चाहिए कि सादा और जिहालत के शिकार लोगों में इल्म व समझ पैदा करें, यानि पहला मरहला ज़बान का जिहाद और क़लम का जिहाद है। यक़ीनन हमारे समाज में ऐसा अक़लमन्द और होशियार तबक़ा वजूद रखता है जिसके दिल में मज़हब व मिल्लत की तड़प मौजूद है और जो मज़हब व मिल्लत के हालात पर रंजीदा भी है और कोई हल भी चाहता है।

हमें ऐसे ही ज़मीर वाले उलमा, खतीबों, अदीबों और शायरों व दीगर नुमाईन्दा तबक़ात पर मुशतमिल एक तरबियत याफ्ता गिरोह तैयार करना पड़ेगा जो अच्छी तरह इस बात को समझ ले कि ''ज़िन्दगी एक अक़ीदा और इसकी ख़ातिर जिहाद का नाम है।''

शुरुआत में यह काम मुश्किल नज़र आता है लेकिन जब हम अपने आगे सिफ़र लगा ही चुके हैं तो फिर कोई परवाह नहीं। हर क़दम आगे ही शुमार होगा चाहे कितनी ही सुस्त रफ़्तारी से क्यों न बढ़ रहा हो।

यह गिरोह अपनी तहरीर, अपने शेरों, अपने ज़ोर बयान और इल्मी सलाहियतों को सिर्फ़ और सिर्फ़ मज़लूम इन्सानों को ज़ालिम दुश्मन की पहचान कराने और उन्हें इकटठा करन पर सर्फ कर दे। मज़लूम लोगों का एकजुट होना ख़ुद एक इंक़िलाब की अलामत है, क़ौमों के इज्तेमाअी फैसले हमेशा दुरुस्त होते हैं। ऐसे मरहलों में तबीअत तशद्दुद (हिंसा) की तरफ मायल होती है लेकिन हमें अपने जवानों को तशद्दुद से रोकना है। यह जवान नस्ल इसलिए नहीं है कि उसे तशद्दुद और क़त्ल व ग़ारतगरी के रास्ते पर डालकर इन्सानियत को और ज़ियादह तबाह करने में हाथ बंटाया जाये। हाँ यह ज़रूर है कि ज़रूरत के वक़्त दिफ़ाअ का हक़ दुनिया का हर मज़हब और क़ानून हमें देता है।

हर वक़्त ध्यान रहे कि हमने हालात को बेहतर

करने का बेड़ा उठाया है न कि और ख़राब करने का, हमें अवाम की मुकम्मल अकसरियत को इंक़िलाब के रास्ते पर डालना है। जब अवामी सैलाब उमन्ड पड़ेगा तो वह एक फ़ितरी मुक़ाबले की तरफ बढ़ेगा और वह अवामी रेला असल दुश्मनों को ग़र्क़ कर देगा। हमारा रास्ता नबियों का रास्ता होना चाहिये जहाँ दिफ़ाअी हिकमते अमली भी इस तरह अख़्तियार की जाती है जिसमें जुल्म व हद से आगे बढ़ने का ज़रा भी इमकान न रह जाये, इस के लिये बड़े ही हौसले, शुजाअत और सब्र की ज़रूरत है। अईम्म–ए–ताहिरीन की ज़िन्दगी और सीरत की मुकम्मल जानकारी ही हमें यह सूझ–बूझ अता कर सकती है।

ऐसे अफ़राद का अक़ीदे का पक्का होना इतना ज़रूरी है, जितना कि मछली की ज़िन्दगी के लिये पानी, खुदा पर ईमान, उसकी वहदानियत और किबरियाई पर कामिल यक़ीन, उसके निज़ामे अद्ल पर इत्मिनान व एतबार, पैग़म्बर ख़तमी मरतबत (स0) और पहले के नबियों की तस्दीक़ और दिल में उनकी मुहब्बत, अईम्म–ए–ताहिरीन का इश्क़ और

उन्हीं के रास्ते पर चलते रहने का अज़म व रोज़े जज़ा (क़यामत) पर ऐसा यक़ीन गोया जन्नत और जहन्नुम को अपनी आँखों से देख रहे हों।

यह सब ज़बानी जमा ख़र्च न हों बल्कि उनका एक–एक अमल उनके अक़ीदे की पुख़तगी की गवाही दे। ऐसे अफ़राद से परवरदिगार का वादा है कि :–

''इन तन्सुरुल्लाहा यन्सुर कुम वयुसब्बित अक़दामकुम'' (सुर–ए–मुहम्मद आयत–7)

(तुम ख़ुदा के दीन की मदद करो खुदा तुम्हारी मदद करेगा, तुम्हें साबित क़दम रखेगा।)

जब हम नबियों और अईम्म–ए–ताहिरीन के रास्ते पर गामज़न होने की बात कर रहे हैं तो फिर हमें अपनी फ़िक्र का दायरा भी बढ़ाना होगा, आलमी फ़िक्र पैदा करनी होगी, हमें फिरक़ा और मकतब से बालातर होकर इस्लामे मुहम्मदी की तस्वीर उजागर करना होगी।

नजात और रिहाई किसी एक गिरोह की नहीं बल्कि बिलकती और सिसकती इन्सानियत के हर गिरोह और हर मकतब की, क्योंकि हर मसलक में

जुल्म के मारे और मुसीबत ज़दह इन्सान मौजूद हैं। नबियों और अईम्मा का मसलक यह है कि ख़ुदा की मख़लूक़ की बात करो, यही इस्लाम है, यही दीन है, यही वह रास्ता है, जो दुश्वार और ख़तरे वाला है, लेकिन हमें इस पर क़दम रखना होगा।

ख़ौफ और दहशत के माहोल में ज़िन्दगी बसर करने वाले यह इन्सान किसी नजात दिलाने वाले का रास्ता देख रहे हैं। सियासी और मज़हबी लिबास में छुपे हुए बिच्छुओं के डंक खाये हुए यह लोग अपने ज़ख़्मों के मरहम की तलाश में हैं। यह कमज़ोर और ज़ीफ इन्सान सिवाये इन्तिज़ार के और क्या कर सकते हैं। इनमें इतनी ताक़त और सकत भी नहीं है कि यह भेड़ियों के इस जंगल से कहीं और हिजरत कर जायें।

हम भी इन्तिज़ार कर रहे हैं उसका जिसका वादा खुदा ने किया है, जिसकी बशारते रसूले अकरम (स0) ने दी है। मगर क्या सिर्फ हाथ पर हाथ धरे इन्तिज़ार करते रहें या उस आने वाले के लिये ज़मीन हमवार करें। अन्धेरी रात में इधर–उधर ठोकरें खाते रहें या दिये पर दिये जलाते रहें। यक़ीनन इन लोगों

पर दिये जलाना वाजिब है जो फलसफ–ए–इन्तिज़ार से आशना है और खुदा ने उन्हें सोंचने समझने की सलाहियातों से मालामाल किया है।

आम हालात में बुलन्द व बड़े–बड़े दावे सभी करते हैं लेकिन इन दावों की हक़ीक़त उस वक़्त सामने आती है जब मुश्किल हालात सामने हों। बक़ौल शहीद मुस्तफा चमरान के :– जब नक़्क़ारा जंग पर चोट पड़ती है तो बहादर व बुज़दिल में पहचान व तमीज़ हो जाती है''। मैदाने इम्तिहान में मालूम होता है कि कौन अपने क़ौल में सच्चा है और कौन सिर्फ़ शेख़ियाँ बघारने वाला। इन्सान की सलाहियतों का इम्तिहान बोहरानी हालत में होता है जो बोहरान के दौरान अपने ऊपर क़ाबू रखे, हवास को अपने कन्ट्रोल में रखे और मर्दाना वार मैदाने अमल में उतर आये उन्हीं लोगों के लिये कलामे इलाही में इरशाद हो रहा है कि :–

''मिनल मुअ्मिनीना रिजालुन सदकू मा आहदुल्लहा अलैइही फमिनहुम मन क़ज़ा नह्बहू वमिनहुम मय्यतज़िरु वमा बद्दलू तबदीला।''

(सूर–ए–अह्ज़ाब आयत–23)

(मोमिनीन में से कुछ मर्द ऐसे हैं जो खुदा से किये हुए अपने अह्द को पूरा कर दिखाते हैं उनमें से कुछ (यह अह्द पूरा करके) जा चुके और कुछ अपनी बारी का इन्तिज़ार कर रहे हैं और इस (तरीक़े) में कोई तबदीली आने वाली नहीं है।)

आज ऐसे हालात का सामना है कि अल्लाह के बन्दों को अपना अह्द पूरा करना है, तारीख़ लिखना है, वक़्त के धारे को मोड़ना है और बिखरी हुई कुव्वत को इकटठा करना है, ऐसा नहीं है कि अफ़राद की कमी है बल्कि एक ऐसे मरकज़ की ज़रूरत है जहाँ इस बिखरी हुई ताक़त को जमा किया जा सके।

ज़िन्दगी का कोई शोबा ऐसा नहीं है जहाँ ईमान वाले और अहले फिक्र व नज़र न हों। यह सब अपनी–अपनी जगह परेशान हैं कि क्या किया जाये और कैसे किया जाये और फिर इनकी नज़रें उलमा की तरफ उठती हैं। क्योंकि यही वह सिन्फ है जो क़ौम को मंझधार से निकाल सकती है। लेकिन कम से कम मौजूदा सूरते हाल यह है कि दूसरों से बेहतर होने के बावजूद इनमें भी ऐसे अफ़राद की कमी है

जो वक़्त के तक़ाज़ों और जदीद मसाएल से फिक्री तौर पर मुकम्मल हम आहंगी रखते हों। बहुत ही माज़िरत के साथ देखने में आया है कि कुछ जगहों पर तो बाज़ अफराद दीन की बुनियादी ज़रूरतों से भी न आशना हैं। उनके पास मिल्लत को देने के लिये कुछ भी नहीं है बल्कि यह तो मिल्लत के पास जो कुछ है उसे भी समेटने की फिक्र में लगे हुए हैं।

यक़ीनन चन्द मुख़लिस और दर्द दिल रखने वाले उलमा ज़रूर हैं जो अपनी तरफ से ज़ख़्मों पर मरहम रखने की कोशिश करते हैं। उनमें कम तादाद ऐसे उलमा की भी है जिनकी मसाएल पर पूरी नज़र है, वह साज़िशों को देख भी रहे हैं और समझ भी रहे हैं, मगर उनकी आवाज़ में इतनी कुव्वत नहीं है कि मिल्लत उनके पीछे चले। दरअस्ल तक़द्दुस के लिबास में उलमा के मक़ाम को कुछ दुनियादार मुल्लाओं ने इस तरह तबाह किया है और उलमा के एतेबार को इस बुरी तरह ठेस पहुँचाई है कि अब लोगों की नज़र में हर आलिम मश्कूक हो गया है और वह इसमें सही भी हैं क्योंकि उनके पास हक़ीक़ी

और गन्दुम नुमा जौ फरोश (गेहूँ दिखाके जौ बेचने वाले) बुरे उलमा को परखने की मीज़ान नहीं है।

जब क़यादत और रहबरी (लीडरशिप) बाज़ारीपन पर उतर आये और अपनी हरकात से मिल्लत का एतमाद खो बैठे तो फिर फितरी रद्दे अमल यह होता है कि गली–गली क़यादतें बनने लगती हैं और वह मनसब जो क़ौम के इज़्ज़त व वेक़ार की अलामत होता है शर्मिन्दगी की वजह बन जाता है। यह अफ़सोसनाक सूरते हाल सिर्फ हमारे यहाँ ही नहीं बल्कि हमसे ज़ियादा दूसरे मकातिबे फिक्र में मौजूद है। लेकिन यह बात हमारे इतमिनान के लिये काफी नहीं बल्कि हमें तो पहले मरहले में ख़ुद अपने हालात की बेहतरी की तरफ क़दम बढ़ाना है।

ऐसे हालात में ज़रूरी नहीं और न ही वाजिब है कि इसी लिबास को क़यादत के लिये तलाश किया जाये बल्कि राहे हल यूँ भी ढूँढी जा सकती है कि मिल्लत व मज़हब के सच्चे और समझदार अफ़राद को चाहे वह ज़िन्दगी के किसी भी शोबे में हों मगर अहलियत रखते हों उन पर मुश्तमिल एक गिरोह

आगे बढ़े उनमें एक शोबा उलमा का भी हो, यह बहुत ज़रूरी है क्योंकि हम देख रहे हैं कि लोगों की एक बड़ी तादाद अपने आप को बिलकुल अलग किये हुए है और जब मिल्लत के मसाएल से अलाहेदगी इख़्तियार करने वालों की अकसरियत दानिश्वरों की है तो हमें भी उनका एतमाद बहाल करना होगा और सारी क़ौम को क़ौमी धारे में शामिल करना होगा।

वैसे भी क़यादत बनायी नहीं जाती बल्कि यह खुद उभरकर सामने आती है जब हम सब मिलकर आगे बढ़ेंगे तो खुदा हमारी मदद करेगा। हमारी क़ौम अभी बाँझ नहीं हुई है बल्कि हमें हालात को साज़गार करने की ज़रूरत है। जैसे ही हम एक सही डगर पर चल पड़ेंगे कुदरती तौर पर क़यादत उभरेगी। हमें क्या मालूम कि हमारे गली कूचों में और माँओं की गोदों में कैसे–कैसे लाल व गौहर पल रहे हैं। कुछ वक़्त बड़ी हिम्मत और सब्र के साथ एक कठिन और मुशकिल सफर तय करना पड़ेगा। आख़िरकार हम अपने मक़सद के मोती को पा लेंगे।

पहले तालूत का लश्कर तरतीब देने की ज़रूरत

है फिर इस लश्कर में कोई न कोई दाऊद निकल ही आयेगा जो जालूत को झुका देगा।

□□□

ज़िम्मेदारियाँ

तलबा (Students) की ज़िम्मेदारियाँ:–

बदक़िस्मती से अब तालिबेइल्म दो क़िस्मों पर तक़सीम हो चुके हैं एक दीनी तालिबेइल्म और एक दुनियावी तालिबेइल्म, इसलिए हमें फिलहाल दोनों को अलग–अलग ज़िम्मेदारियाँ देना पड़ेंगी उस वक़्त तक जब तक यह दोनों फिर से एक नहीं हो जाते। मतलब यह है कि सही माने में तालीमी निज़ाम ऐसा होना चाहिए कि अलग–अलग दीनी मदरसे और दुनियावी तालीमी स्कूलों के बजाये एक ही दानिशकदे में सारे उलूम पढ़ाये जायें फिर आगे चल कर जिसकी जैसी सलाहियत हो उसे उसी मैदान में तख़स्सुस (Specialization) कराया जाये। ताकि वह जिस मैदान में भी जाये ईमान की दौलत से मालामाल जाये।

दीनी तलबा की ज़िम्मेदारियाँ:–

कोई भी जवान दीनी मदरसे में दाख़ला लेने से

पहले हज़ार बार सोचे कि वह किस वादी में क़दम रख रहा है उसे पेशावर और रिवायती मोलवी बनना है या वक़्अी दीन की नज़रियाती सरहदों की निगेहबान, ख़ुद उसकी मर्ज़ी है कि वह आलिमे दीन बने या हालात का ज़ोर उसे दीनी मदरसे की तरफ खींच लाया है मसलन मआशी मजबूरियाँ या कम अक़्ली की वजह से माँ–बाप उसे ज़बरदस्ती मदरसे में बिठाना चाहते हैं या बेचारा बाप ज़ियादा औलादें होने और आमदनी कम होने की वजह से इसे मदरसे के सर थोपना चाहता है।

बल्कि बाज़ दफा और बाज़ जगह तो यह भी देखने में आया है कि दीनी मदरसा सिर्फ एक हास्टल की शक्ल इख़्तियार कर जाता है दूसरे इलाक़ों से आने वाले होशियार लड़के कालेजों में दाख़ले लेकर मुफ्त रिहाइश और खाने की सहूलत इस मदरसे से हासिल कर लेते हैं। कालेज से फारिग़ होते ही मदरसे से भी फारिग़ हो जाते हैं या उस वक़्त तक रुके रहते हैं जब तक कहीं नौकरी नहीं मिल जाती (मेरी बात का बुरा मानने से पहले बाज़ ऐसे मदारिस का दौरा करके मेरी बात की तहक़ीक़ व तस्दीक़

ज़रूर कर लें)।

मुफ्त खाने और रहने के अलावा उन्हें माहाना वज़ीफे की सूरत में आने जाने का किराया भी मिल जाता है यह तो है ख़यानत और ऐसा फ़र्द सिवाय अपने नफ्स को धोका देने के और कुछ भी हासिल नहीं कर रहा है ऐसे अफ़राद न दीन की ख़िदमत करने वाले बन सकते हैं और न ही दीन की नज़रियाती सरहदों की हिफाज़त करने वाले।

एक कम अक़्ल फर्द को जिसे उसके माँ–बाप मदरसे के सर थोप जाते हैं आप इससे क्या उम्मीद करते हैं? जो दुनियावी तालीम में फेल हो रहा हो, दीन के मसाएल का क्या करेगा?

इसकी बेशुमार मिसालें महल्ले–महल्ले और गली–गली आपको बिखरी हुई नज़र आ जायेंगी। ज़ाहिर है जो आप बोयेंगे वही काटेंगें। जो आप मदरसों के हवाले करेंगे वही आपको वापस मिलेगा। यह बात सिर्फ इस ज़माने से ही जुड़ी हुई नहीं है बल्कि हर ज़माने में ऐसा ही होता रहा है। 'इक़बाल' ने हमारे मदारिस नहीं बल्कि अपने ही मक्तब के

मदारिस और उनसे बनने वाले मोलवियों के बारे में अपनी राय का इज़्हार इस तरह किया था।

क़ौम क्या चीज़ है, क़ौमों की इमामत क्या है

इसको क्या समझें, यह बेचारे दो रकात के इमाम

इसलिये ज़रूरी है कि इस काँटों भरी वादी में क़दम रखने से पहले हज़ार बार फिक्र करे, सोंच ले फिर क़दम उठाये। अपने खुदा से अहद करे, अपने आप से अहद करे, मदरसे में जाने के बाद उसका एक–एक लम्हा खुदा के दीन के लिये वक़्फ हो। उसकी साँसें दीन के लिये वक़्फ हों। उसकी नींद, उसका जागना, उसकी फिक्रें सब मज़हब व मिल्लत के लिये वक़्फ हों। एक लम्हे के लिये भी फरामोश न करे कि वह लश्करे ख़ुदा का सिपाही है और लश्करे ख़ुदा के सिपाही को किन सिफात का हामिल होना चाहिये? गहराई में जाने से बचने के लिये फिर इक़बाल की फिक्र का सहारा लेता हूँ :–

सबक़ पढ़ सदाक़त का, अदालत का, शुजाअत का

लिया जायेगा तुझसे काम, दुनिया की इमामत का

'इक़बाल' पर भी उलमा दुश्मनी का इल्ज़ाम इसीलिये लगा था कि उसके सामने जो उलमा थे वह अंग्रेज़ों का चमचे थे और 'इक़बाल' अपने उलमा को अबूज़र (रज़ि0) व सलमान (रज़ि0) की तरह देखना चाहता था।

क़ौमों की इमामत व रहबरी कोई आसान मसला नहीं है कि जिसने अपने जिस्म पर दस्तार व क़बा सजा ली वह रहबरी का हक़दार हो गया। बल्कि इसका ताल्लुक़ उन सिफात से है जो इन्सान अपने अन्दर पैदा कर लेता है बल्कि इन्सान भी इन सलाहियतों को पैदा नहीं कर सकता वह तो सिर्फ अपने अन्दर क़ाबलियत पैदा करता है जब अपने अन्दर क़ाबलियत व लियाक़त पैदा कर लेता है तो परवरदिगार ख़ुद ही यह सलाहियत और मन्सब अपने बन्दे को अता कर देता है।

अज़ीज़ दीनी तालिबेइल्मों! हमारे मदारिस का माहोल और मेअ्यार दूसरों से कहीं बेहतर है मगर बाज़ मरतबा यह भी देखा गया है कि बाज़ इन्तिहाई पाक और सच्चे दीन की ख़िदमत के शौक़ में डूबे हुए

जवान दीनी मदारिस में दाख़ला लेते हैं लेकिन बाज़ मदारिस के माहोल से मायूस होकर या तो दीनी तालीम ही छोड़ देते हैं या उसी माहोल में रंग जाते हैं और उनका वजूद ही ज़हर भरा हो जाता है।

यक़ीनन जब आप मदरसे में दाख़िल होते हैं और दर्स व तदरीस की शुरुआत होती है तो आपको सबसे पहले उन अहादीस को भी याद कराया जाता है और ज़हेन में बिठाया जाता है जिसमें तालिबेइल्म की फज़ीलत और उसके मक़ाम को बयान किया गया है और हक़ीक़त भी यह है कि जब कोई घर से इल्म हासिल करने के लिये निकलता है तो फरिश्ते उसके क़दमों के नीचे अपने पर बिछा देते हैं, लेकिन यही तालिबेइल्म जब मक़सद से हटकर सिर्फ दुनिया हासिल करने में फंस जाते हैं तो फिर फरिश्तें नहीं बल्कि शैतान उनके लिये अपनी आँखें बिछा देता है और इसी दीन के मुबल्लिग़ से दीन को बर्बाद करने का काम लेता है। खुदा हमारे दीनी तालिबेइल्मों को शैतान मरदूद से अपनी पनाह में रखे।

तो अब दीनी मदरसे में रहते हुए हर वक़्त

अपनी चौकीदारी भी करना है। दूसरे क्या कर रहे हैं इससे कोई मतलब नहीं होना चाहिये। हर दौर में यही कुछ होता रहा है सैकड़ों बल्कि हज़ारों इन्सान आलिम बनने जाते हैं मगर उन हज़ारों में सब के सब ख़ुमैनी, बेहेश्ती, मुतह्हरी, हुसैनी नहीं बन जाते बल्कि हज़ारों में कोई एक ऐसा निकलता है जो समाज में इंक़िलाब बरपा करने की सलाहियत हासिल कर लेता है।

जिस तरह एक मोती हासिल करने के लिये बरसों ग़ोताख़ोर बेशुमार सीपियाँ निकालता है उसी तरह हज़ारों तलबा में कोई एक इमाम की नियाबत का हक़दार बनता है।

समाज के सुधार के लिये ज़रूरी है कि पहले ख़ुद सुधार के मरकज़ और सरचश्मे का सुधार किया जाये। इल्म सिर्फ किताबें पढ़ लेने का नाम नही है। इल्म तो एक नूर है, एक रौश्नी है, एक रास्ता है, समझ की मेअ्राज है, इल्म तो दुनिया की गहराईयों में गुम हो जाने का नाम है। मदरसा, किताब, उस्ताद यह सब इसी नायाब मोती को हासिल करने के रास्ते

हैं। जब मैं दीनी मरकज़ों के सुधार की बात कर रहा हूँ तो मेरी मुराद उन मदारिस से नहीं है जो पाक और बा सफा उलमा की निगरानी में ईमानी और रूहानी माहोल में चल रहे हैं बल्कि मेरी मुराद वह इदारे हैं जहाँ इन्तिज़ामी सलाहियतों से महरूम अफराद उन मदरसों और इदारों के सरपरस्त बने बैठे हैं।

□□□

दीनी मदारिस की इस्लाह

इन बा ईमान और ज़िम्मेदार असातेज़ा से इन्तिहाई माज़रत के साथ जो दयानतदारी और दर्दमन्द दिल के साथ मुस्तक़बिल के उलमा की तैय्यारियों में मसरूफ़, हैं लेकिन यह बा ईमान और बा सफा असातेज़ा भी मेरी इस बात की ताईद करेंगे कि ज़िन्दगी की हर शोबे की तरह इस मुक़द्दस शोबे में भी प्रोफेश्नलिज़म (कारोबारी अन्दाज़) घुस आया है।

बाज़ मदारिस का यह हाल है कि यह कुछ लोगों की दुकानें हैं जहाँ क़ौम व मज़हब की ख़िदमत से ज़ियादह अपने और अपने आने वाले बच्चों के लिये ठिकाना बनाना मक़सद है। यह कितने अफ़सोस की बात है मस्जिद और मदरसे को अपनी मीरास

समझ लिया जाता है। पेश इमाम चाहता है क मेरी औलाद क़ाबिल हो या न हो मस्जिद की इमामत मेरे पास या मेरे बच्चों के पास ही रहनी चाहिये। हमारे बाज़ बेहतरी दीनी मरकज़ सिर्फ़ इसलिए गुमनाम हो गये हैं कि बुजुर्ग उलमा के जाने के बाद वहाँ ना अहल अफराद क़ाबिज़ हो गये।

सबसे पहले मदारिस को ज़ाती मिलकियत की क़ैद से बाहर निकाला जाये, वह कैसे होगा?

दरअसल सारा झगड़ा उन मफादात का है जो मदरसे के ज़रिये हासिल किये जाते हैं। हम सब जानते हैं कि खुम्स हमारे इदारों की बक़ा और तरक़्क़ी के लिये रीढ़ की हड्डी का काम देता है। लेकिन अगर ख़ुदानख़्वास्ता इसी ख़ुम्स का ग़लत इस्तेअ्माल होने लगे तो न सिर्फ यह कि इदारे तबाह हो जाते हैं बल्कि ग़रीब और फक़ीर भी बेआसरा रह जाते हैं। ज़रा ग़ौर कीजिये कि इस मुसीबत और मज़हब से दूरी के दौर में भी अरबों के हिसाब से ख़ुम्स निकाला जाता है। ख़ुम्स पर चन्द मौलवियों और चन्द सरमायादारों का क़ब्ज़ा है। माले इमाम

मदारिस की और इजाज़ह रखने वाले मौलवियों की नज़र हो जाता है और सादात के हिस्से के हक़दार सादात की एक फीसद तादाद को मुश्किल से उनका हक़ पहुँच पाता है। ख़ुम्स लेते वक़्त तो सारी ज़िन्दगी का हिसाब आप से ले लिया जाता है। आज तक हमारे मुल्क में किसी ने वसूल किये जाने वाले ख़ुम्स का भी हिसाब दिया? यह तो हर शख़्स को कहते सुना है कि हमारे पास फलाँ–फलाँ मराजे इज़ाम की तरफ से ख़ुम्स लेने की इजाज़त है। लेकिन यह आवाज़ कहीं से नहीं आती कि मुस्तहक़ अफराद ख़ुम्स के लिये हम से रुजूअ करें।

क्यों? क्या सिर्फ एक आम मोमिन इमाम का जवाबदेह है उलमा नहीं? यक़ीनन उलमा की जवाबदही सबसे ज़ियादह है। काग़ज़ का एक पुरज़ा जिसे इजाज़े का नाम दे दिया गया है उस पर भी मरजअे तक़लीद यही लिखता है कि बहुत ही एहतियात से मक़सद से जुड़े हुए कामों में ख़र्च करने के बाद अपनी मआशी ज़रूरत को भी साहबे इजाज़ह पूरा कर सकता है। बस इस एक आख़री जुम्ले ने मुसीबत

कर दी। अब एक मौलवी की मआशी ज़रूरत क्या है इसकी कोई हदबन्दी नहीं है या तो इसका कोई न कोई करोड़ों रुपये का प्रोजेक्ट होता है और फिर उस प्रोजेक्ट के बाद उसकी अयाल की मआशी ज़रूरियात, तो फिर अब ज़ाहिर है कि ग़रीब आदमी कहाँ जाये, उसकी ज़रूरत कौन पूरी करे? दूसरी तरफ़ कुछ उलमा और ज़िम्मेदार इख़्तियार रखने वाले हज़रात गरीबों और फक़ीरों की सरपरस्ती और इमदाद करते हैं तो सारा बोझ इल्ज़ामों और तोहमतों के साथ उन के ही सर आ पड़ता है। अगर इस ख़ुम्स के आने और जाने दोनों का हिसाब होने लगे तो यक़ीनन क़ौम तेज़ी से तरक़्क़ी के रास्ते पर चल पड़ेगी।

इसलिए इस ख़ुम्स को मरकज़ियत (Centralization) हासिल होना चाहिए, लेने का भी और देने का भी हिसाब होना चाहिए। ज़रूरत के मुताबिक़ मदरसों का क़याम होना चाहिए। यह नहीं कि जहाँ दिल चाहे, जिसका दिल चाहे ख़ुम्स की दुकान सजाकर और ख़ुम्स का माल समेटकर मदरसा

खोलकर बैठ जाये। उलमा के वज़ाएफ उनकी ज़रूरियात के मुताबिक़ हों, तहक़ीक़ी मराकिज़ का क़याम हो जहाँ उलमा मुख़्तलिफ मैदानों और मौज़ूआत (Topics) पर तहक़ीक़ाती ख़िदमात अन्जाम दे सकें। जदीद उलूम ख़ास तौर पर कम्प्यूटर साईंस के मरकज़ क़ायम करना, मेडिकल और इंजीनियरिंग कालेज और युनिवर्सिटीज़ को क़ायम करना, अस्पतालों का क़ायम करना, बेवाओं, यतीमों और नादार इन्सानों की सरपरस्ती, क़ौम के बच्चों को लाज़मी तौर पर तालीमी ज़ेवर से आरास्ता कराना, असीरों की देख–भाल, कौन सा मसला ऐसा है जो हम ख़ुम्स के ज़रिये हल नहीं कर सकते, मगर इसका सही इस्तेमाल तो हो। मैं इस फिक्र में तनहा नहीं हूँ, बल्कि बाज़ बुज़ुर्ग उलमा भी मेरी इस फिक्र की ताईद करते हैं।

बज़ाहिर मेरी यह बात नई और अजीब लगेगी मगर मुझे यक़ीन है कि आने वाले वक़्त में यह सारी क़ौम की आवाज़ होगी। जिस तरह ख़ुम्स निकलवाने के लिये लोगों को तबलीग़ और तरग़ीब दी जाती है बिल्कुल इसी तरह ख़ुम्स वसूल करने वालों को भी

पाबन्द करना पड़ेगा कि वह ख़ुद ही सालाना वसूल किये गये ख़ुम्स का हिसाब लिखें। यही ख़ुम्स की ग़ैर मुनसिफाना तक़सीम इदारों और अफ़राद में रस्साकशी का बाअिस ही नहीं बन रही बल्कि दरबारी मुल्लाओं की पैदावार में मुसलसल इज़ाफे का बाअिस भी बन रही है। क्योंकि यही माल व ज़र उलमा को सरमाया दारों के दर का गुलाम बना देता है, और अवाम को उलमा के दर का। (अवाम को उलमा के दर का गुलाम ज़रूर होना चाहिये मगर इस अन्दाज़ से नहीं जो माल हासिल करने के लिये अपनाया जाता है)।

अगर हम चाहते हैं कि हमारे दीनी मदारिस दीन के सच्चे और मुख़लिस मुहाफिज़ों की परवरिश करें तो हमें मदारिस के निज़ाम में भी कुछ तबदीली करना होगी, तमाम मदारिस में एक दर्सी निज़ाम क़ायम करना होगा। मदरसे में दाख़ला लेने वाले तलबा का एक मेअ्यार क़ायम करना होगा, इलाक़ाई ज़रूरत के मुताबिक़ मदारिस क़ायम करने होंगे। इस मदरसे का कोई मालिक नहीं बल्कि मुन्तज़िमे आला हो जिसकी मुद्दत मुक़र्रर होनी चाहिये। यह मुन्तज़िम

का मन्सब वरसे में नहीं बल्कि क़ाबलियत की बुनियाद पर मिलना चाहिये और इस क़ाबलियत का फैसला उलमा का एक बोर्ड करे। तमाम शहरों में मदारिस के क़याम के बाद किसी एक शहर में एक ''इल्मी शहर'' जिसे यूनिवर्सिटी कहिये या हौज़–ए–इलमिया कहिये दीनी तालिबेइल्म की आला तालीम यानी इज्तेहाद के लिये होना चाहिये।

ज़रूरी नहीं है कि सारे तालिबेइल्म दूसरे मुल्कों में पढ़ने के लिये जायें। और न ही आज के दौर में यह मुमकिन है कि यहाँ के सारे तालिबेइल्मों को दूसरी जगहों पर दाख़ले मिल जायें। यह भी तो हो सकता है कि कुछ अर्से के लिये दूसरे मुल्कों से क़ाबिल असातेज़ह को बुलाया जाये आख़िर निस्फ (आधी) सदी पहले तक बर्रे सग़ीर (हिन्दुस्तान–पाकिस्तान) में इज्तेहाद होता था या नहीं। लेकिन जब हमारे मदारिस की सोच ही महदूद हो उन में ख़ुद ही आगे बढ़ने का जज़्बा न हो और उस्ताद इस बात से डरता हो कि शार्गिद कहीं मुझसे आगे न निकल जाये तो फिर ऐसे मदारिस से उम्मीदें

बेकार हैं। वह समाज को मसाएल के बोझ से तो क्या अज़ाद कराते हैं बल्कि ख़ुद समाज पर बोझ बन जाते हैं।

□□□

कालेजों के तलबा की ज़िम्मेदारियाँ

अज़ीज़ दोस्तों! आपको हमसे शिकायतें हैं, आप हमसे बदगुमान हैं, और दूर नहीं कि आप की एक बड़ी तादाद हम से मायूस हो चुकी हो। ख़ैर, मैं इन सतरों में आपके सामने अपनी सिन्फ की सफाई पेश नहीं करूँगा, लेकिन जो बातें पेश करने जा रहा हूँ शायद वह आपके ग़मों को कुछ हल्का कर सकें।

याद रखिये! हज़रत आदम (अ0) से लेकर आज तक कोई दौर, कोई ज़माना, कोई सरज़मीन ऐसी नहीं कि जहाँ एक ही वक़्त में अच्छे और बुरे लोग न हों। यह दोनों कुव्वते हमेशा मद्दे मुक़ाबिल और आमने–सामने रही हैं। बुरे लोग सिर्फ बुरे लोग होते हैं उनकी कोई क़िस्म नहीं होती। बल्कि वह उन ही बुराईयों और कमियों को छुपाने के लिये मुख़तलिफ

भेस बदलते रहते हैं। मिसाल के तौर पर आपके सामने एक वाक़ेआ नक़ल करना चाहता हूँ जो मैंने क़ुम के क़याम के दौरान अपने किसी उस्ताद से सुना था कि आयतुल्लाह बुरुजर्दी की मरजिइय्यत के दौर में किसी दीनी मदरसे में तलबा के कमरों में चोरियाँ शुरु हो गयीं। तलबा शिकायत लेकर आयतुल्लाह बुरुजर्दी के पास पहुँचे और अर्ज़ किया कि कुछ तालिबेइल्मों ने चोरी शुरु कर दी है। फौरन ही आक़ाए बुरुजर्दी ने टोका कि ख़बरदार फिर किसी तालिबेइल्म को चोर मत कहना। कैसे हो सकता है कि कोई दीनी तालिबेइल्म चोरी जैसा गुनाह अन्जाम दे बल्कि यूँ कहो कि कोई चोर तालिबेइल्म के भेस में आया है।

तो अज़ीज़ जवानों! मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं आपके सामने सफाई पेश करना नहीं चाहता, बल्कि सिर्फ इतना ही अर्ज़ करना चाहता हूँ कि बुरे को ज़रूर बुरा कहें मगर सारी उलमा की सिन्फ को बुरा मत कहिये। बिलकुल इस तरह जैसे आपके क्लास में पढ़ने वाले तमाम स्टूडेन्टस न तो एक सलाहियत के मालिक होते हैं, न ही एक जैसे नम्बर

हासिल करते हैं और न ही सबके सब पास हो जाते हैं। बस यह हम और आप ही में से तो लोग हैं जो इसी इन्सानी फितरत के साथ मदारिस में जाते हैं। कुछ बदल जाते हैं, कुछ वैसे के वैसे, सिर्फ उलमा के लिबास बदन पर चढ़ा कर वापस आ जाते हैं।

क्या पैग़म्बर अकरम (स0) के मुबारक तरीन दौर में तमाम अस्हाब यकसाँ रुतबे वाले थे? क्या जंगे ओहद और जंगे हुनैन में रसूल अकरम (स0) को छोड़कर फरार इख़्तियार करने वाले सहाबी न थे? क्या आइम्म–ए–ताहिरीन के शागिर्दों में उन ही के ख़िलाफ बग़ावत करने वाले न थे? क्या इमाम जाफर सादिक़ (अ0) के मदरसे से मुबारक और मुक़द्दस मदरसा कोई हो सकता था? मगर क्या उस मदरसे के तमाम शार्गिद इमाम के मेअ्यार पर पूरे उतर सके? यक़ीनन ऐसा नहीं हुआ बल्कि हर दौर में अम्बिया और अइम्मा की तालीमात भी तमाम लोगों में तबदीली न ला सकी तो फिर हम आज के दौर में यह उम्मीद कैसे कर लें कि तमाम उलमा दीन की ज़िम्मेदारियों को उनके हक़ के साथ पूरा कर सकेंगे।

लेकिन ऐसा भी किसी दौर में नहीं हुआ कि ज़माना बिलकुल उलमा–ए–रब्बानी और उलमा–ए–बाअमल से ख़ाली हो जाये। हर दौर में फायदा ढूँढने वाली और दीन को बेचने वाली मुल्लाइयत के मुक़ाबले में मुजाहिद उलमा का मुख़्तसर ही सही मगर एक गिरोह मौजूद रहा जो हक़ तलाश करने वालों के लिये ज़ुल्म व जह्ल की तपती धूप में सायादार पेड़ बना रहा। अगर उलमा–ए–हक़ की कुर्बानियाँ न होतीं तो अब तक तशैय्युअ (शीआ धर्म) दम तोड़ चुका होता।

बस, पीछे मुड़कर हमें तारीख़ से सबक़ ज़रूर लेना है। मगर क़दम आगे ही बढ़ाना है। आप यह गुमान भी मत कीजिये कि आप दीनी तालिबेइल्म नहीं हैं। आप किसी भी स्कूल, कालेज या यूनिवर्सिटी में क्यों न हों अगर आपके दिल में मज़हब व मिल्लत का दर्द मौजूद है, दीन की ख़िदमत का जज़्बा रखते हैं, जद्दो जेहद करने का हौसला रखते हैं, तागूत की नफ़रत दिल में रखते हैं, मज़लूमों के ग़म को महसूस कर रहे हैं तो आप दीन ही के तालिबेइल्म हैं।

आप पढ़िये और ख़ूब पढ़िये। आप की अपने

शोबों (Fields) में महारत और तरक़्क़ी अस्ल में मज़हब व मिल्लत ही की तरक़्क़ी है। सियासी और मज़हबी भेड़ियों के मफादात की भेंट चढ़ने से अपने आपको बचाइये। नाअहल लोगों को बुलन्दी तक पहुँचाने वाली सीढ़ियाँ मत बनिये। आप पर बहुत ही भारी ज़िम्मेदारी है।

दुरुस्त है कि जवानों के जज़्बात, एहसासात और फौरी रद्दे अमल की ख़्वाहिश दूसरे तमाम तबक़ात से ज़ियादा होता है। वह हालात को समझते हैं तो फौरी तौर पर हल करना भी चाहते हैं। और बाज़ दफा बल्कि अक्सर ऐसा होता है कि जवानों के इन ही जज़्बात और एहसासात से खेलकर फायदा ढूँढने वाली कुव्वतें, चाहे वह सियासी लिबास ओढ़े हुए हो चाहे मज़हबी, उन्हें इस्तेमाल कर जाती हैं और बाद में यही जवान जब उन क़यादतों से बदज़न हो जाते हैं तो मुख़ालिफ़त में हदों से भी आगे निकल जाते हैं।

आप जवानों को भी अपनी ग़लतियों पर नज़र डालनी होगी, अपना हिसाब लगाना होगा। कालेज और यूनिवर्सिटियों में जारी सियासी अमल जवानों

को बहुत कुछ सिखा देता है। जो कुछ दीनी मदारिस के बारे में, मैंने इज़हार किया है, वही कालेजों और यूनिवर्सिटियों में जदीद अन्दाज़ में होता है। हमारे अक्सर जवान इस एहसासे बरतरी (Superiority Complex) का शिकार हो जाते हैं कि क्योंकि वह जदीद तालीम हासिल कर रहे हैं, इसलिए उनकी समझ और हालात को समझने और क़ौम को चलाने की सलाहियत दूसरों से ज़ियादा है।

यही वह ख़तरनाक फिक्र है कि मिल्लत के हालात बिगाड़ने में बाज़ इस्लाम को न समझने वाले मौलवियों के साथ–साथ इस फिक्र का भी बहुत बड़ा हिस्सा है। गुज़श्ता कुछ सालों में यह बात भी देखने में आयी है कि इन्तिहाई मन्सूबा बन्दी के साथ जवानों के ज़ेह्न में यह बात डालने की कोशिश की गयी कि सारे मौलवी बेकार हैं, यह मसाएल को न तो समझते हैं और न हल करने के क़ाबिल हैं। इस तरह रूहानियत पर एक गहरी चोट लगायी गयी और उलमा और जवानों और दानिश्वरों में एक दीवार हायल हो गयी। यह कोई अच्छी बात नहीं हुई। हमें यह दिमाग़ में बिठा लेना चाहिये कि हर

आलिम ख़ुमैनी और बेहिश्ती नहीं हो सकता। हौज़एइलमिया बरसों तक हज़ारों उलमा की परवरिश करता रहा जब जा के एक ख़ुमैनी वजूद में आया। जबकि हमारी सरज़मीन तो माज़ी बअीद में भी तशय्युअ में कोई इंक़िलाबी तहरीक वजूद नहीं रखती थी।

हमें तो सिफ़र से चलना पड़ रहा है। हमें आज बीज बोना है ताकि कल आने वाले फसल काट सकें हम बीज बोए बग़ैर कैसे फलों से लदे हुए दरख़्त की उम्मीद करते हैं?

ज़रूरत इस बात की है कि हालात की ख़राबी की ज़िम्मेदारी एक दूसरे पर डालने के बजाय भरपूर तरीक़े से इल्मी जिहाद का आग़ाज़ कर दिया जाये। आप के हाथ में क़लम सबसे बड़ा हथियार है। आप जिस शोबे में भी तालीम हासिल करें उसमें पूरी महारत हासिल करें और साथ ही साथ यह अह्द भी करें कि आपकी सारी सलाहियतें मज़हब व मिल्लत की फलाह के लिये वक़्फ होंगी। खुद तालीम हासिल कीजिये और दूसरों को तालीम दीजिये। इसके साथ ही साथ दीनी मदारिस के तलबा से आपका मुस्तक़िल राबता रहना ज़रूरी है ताकि मुस्तक़बिल के उलमा

से आपकी हम आहंगी क़ायम रह सके और आप दीनी तलबा के लिये और दीनी तलबा आप के लिये रूहानी एतबार से तक़वियत का सबब हों।

यह ताल्लुक़ात और हम आहंगी आप दोनों की रूहानी तरबियत के लिये ज़रूरी हैं। इस तरह आप तमाम मामलों में चौकन्ने रहेंगे और हर चीज़ को हक़ीक़त पसन्दी की नज़र से देखेंगे। साम्राजी ताक़तों ने आपके ख़िलाफ अचानक साज़िश नहीं की है, बल्कि आज की आलमे इस्लाम की सूरते हाल कई सदियों से जारी सम्राजी साज़िशों का नतीजा है। आपको भी मनसूबा बन्दी करना होगी, ग़ौर व फिक्र के वक़्त को बढ़ाना होगा। साम्राजी ने आपकी कमज़ोरियों से फायदा उठाया है आपको अपने दुश्मन की कमज़ोरियाँ तलाश करना होंगी, जो यक़ीनन आपसे ज़ियादह कमज़ोरयों का हामिल है।

एख़लाक़ी फसाद का मैदान हो या तबाही व बर्बादी की दास्तानें यह सब आपके दुश्मन की कमज़ोरियाँ हैं। अब हमें दुनिया के सामने इन्हें कैसे पेश करना है यह हमारी काम की समझदारी पर मुनहसिर है।

आज का मग़रिबी समाज रूहानी इक़दार (मूल्यों) से ख़ाली है। आज ख़ुद ईसाईयत मज़हब के एतबार से अपनी बर्बादी पर रो रही है। अभी हाल में ही (जुलाई–2004 ई0) हमजिन्स परस्तों (Homosexuals) ने अपने हक़ूक़ की हिमायत में जर्मनी में एहतेजाजी मुज़ाहरे किये, जिस पर पापाए रोम (Pope) भी चिल्ला उठे और इसे इन्तिहाई ग़ैर इन्सानी फेअल और मज़हबे ईसाईयत की तौहीन क़रार दिया। इस तरह ख़ुद अमरीका में नाजाएज़ बच्चों की तादाद इतनी बढ़ चुकी है कि वहाँ कई इदारों में वलदियत का ख़ाना ही हटा दिया गया है, बल्कि माँ का नाम लिखा जाता है।

ख़ानदानी इक़दार का आलम यह है कि बच्चे माँ–बाप को शादी की ख़बर ख़त से देते हैं। दूसरे रिश्तों का तो ज़िक्र ही क्या? ख़ुद माँ–बाप को बूढ़ा होने पर ''ओल्ड हाउस'' में जमा करा दिया जाता है या वह औलाद की लापरवाहियों से तंग आकर ख़ुद ही वहाँ दाख़ला ले लेते हैं।

अज़ीज़ जवानों! यह सिर्फ इशारे हैं जो सिर्फ इसलिए कर रहा हूँ कि आप भी चाहें तो तहक़ीक़ के

दरवाज़े खोलें और चालों की जो ज़बरदस्त जंग (Colonial Power) इस्तेअ्मार ने हमारे ख़िलाफ शुरु की हुई है, उसका मुँहतोड़ जवाब दें।

अब तक यह होता रहा है कि हम अपनी सलाहियतें आपस ही के इख़्तेलाफ़ात में ख़र्च करते रहे हैं और इसमें सब शरीक हैं। अब बीस सालों के तजुर्बे के बाद हमें इतना सीख लेना चाहिये कि काली भेड़ों से अपनी तवज्जुह हाटाकर उन भेड़ों को हंकाने वाले की तरफ ध्यान रखना चाहिये जैसा कि लेबनान के तजुर्बे ने सिखाया। वहाँ बरसों तक आपस की घरेलू जंगों ने सिवाय तबाही और बर्बादी के कुछ न दिया, मगर जब खुदाई लश्कर ने अपना सारा ध्यान असली और मक्कार दुश्मन की तरफ की, तो कामियाबी ने उनके क़दम चूमे और साम्राज को सर पर पैर रखकर भागना पड़ा।

आप इस इन्तिज़ार में न रहें कि कोई बाहर से आकर आपको इस दलदल, तूफान या मंझधार से निकालेगा। इमाम ख़ुमैनी ने सारी दुनिया के मज़लूमों को यह पैग़ाम दिया था कि ''आप यह इन्तिज़ार न करें कि कोई आप के लिये इंक़िलाब करेगा, बल्कि

हर क़ौम को खुद अपने लिये जद्दोजहद करना पड़ेगी।''

दोस्तों! इंक़िलाब की हिमायत और चीज़ है और दूसरों के सहारे पर बैठ जाना और चीज़, राहे इमाम ख़ुमैनी पर चलना और चीज़ है और किसी का हथियार बन जाना और चीज़। हमें अब हालात और वाक़ेआत की रोशनी में अपनी राह तय करनी होगी, इंक़िलाब के किरदार और अफ़राद के किरदार में तमीज़ करनी होगी। जुग़राफियाई (Geographical) सरहदें बदलते ही पेश होने वाले हालात बदल जाते हैं, इस्लाम के कुल्लियात (सिद्धान्त) तबदील नहीं होते, मगर हर जगह के सक़ाफती तक़ाज़ों से मिल जाना भी मज़हबी ज़रूरियात ही में से है।

पहली सदी में जहाँ भी इस्लाम का पैग़ाम पहुँचा, उसने वहाँ की उन इलाक़ाई और सक़ाफती रसमो रिवाज से कोई सरोकार न रखा जो इस्लाम के कुल्ली क़वानीन से नहीं टकराती थीं। इसीलिये आज दुनिया भर के मुसलमान अगरचे कि दीन के एतेबार से एक रिश्ते में जुड़े हैं लेकिन हर जगह के रहन–सहन के आदाब और कुछ ख़ास रसमो रिवाज

के पाबन्द हैं, जिन्हें इस्लाम ने ख़त्म नहीं किया, हाँ यह ज़रूर है कि जो रुसूम इस्लाम के ख़िलाफ थीं उन्हें फौरन ख़त्म कर दिया गया, या उनमें सुधार के रास्ते तलाश कर लिये गये।

मुझे उम्मीद है कि मेरी यह मुख़्तसर सी बातें आप अज़ीज़ जवानों के लिये फिक्र के नये रास्ते खोलेंगी और आप नये इरादे और हौसले के साथ दुश्मन से मुक़ाबले की तैय्यारी की शुरुआत करेंगे।

□□□

अज़ादाराने इमामे हुसैन अलैहिस्सलाम!

आप ही वह हुसैनी लश्कर हैं जो शीओयत को अल्लाह के इनाम के रूप में मिला है। यूँ तो सारी मिल्लते जाफरिया ही इस उनवान की मिस्दाक़ है मगर इस ज़माने में अज़ादारी अपनी बढ़ती हुई मन्ज़िलें तय करती हुई उस जगह पहुँच चुकी है कि अब पूरी तरह इसमें शोबे बन चुके हैं। ओलमा, ख़तीब, ज़ाकेरीन, मर्सिया पढ़ने वाले, मज्लिसों के बानी, मातमी अन्जुमनें, स्काउट के दस्ते और इसके अलावा भी बहुत से हिस्से।

हमें पूरा यक़ीन है कि हम ही वह अज़ादाराने हुसैनी हैं जो हुसैन (अ0) की माँ की दुआ का हासिल हैं। इसलिए हमें जब तक जीना है, हुसैन (अ0) के ग़म के साथ जीना है।

लेकिन यहाँ एक सवाल पैदा होता है कि सिर्फ मज्लिसे अज़ा कर लेने से हम सबकी ज़िम्मेदारी पूरी हो जाती है? इस अज़ादारी को ले लीजिये, कुछ जगहों पर बल्कि हर जगह झगड़ा इस बात पर है कि एक ख़ास जमात चाहती है कि अज़ादारी रुक जाए। इस मसअले पर बात आगे बढ़ती है, झगड़े की नौबत आ जाती है। कितने ही अज़ादार जामे शहादत पी चुके हैं, कितने ही अज़ादारी के लिए ज़ंजीरों में जकड़े जा चुके हैं। क्या उन शहीदों के वारिसों की ज़िम्मेदारी और क़ैदियों के मसाएल हल करना हमारी ज़िम्मेदारी नही है? क्या उस खास, तैयार शैतानी जमाअत के ख़िलाफ क़ौम को तैयार करना हमारी ज़िम्मेदारी नही है?

लेकिन अजीब बात यह है कि हमारी ही सफों में यह आवाज़ें उठने लगती है कि यह सियासत है और हमारा सियासत से कोई तअल्लुक़ नही है। अगर यह सियासत है और हमारा सियासत से कोई तअल्लुक़ नही है तो यह मसाएल कौन हल करेगा? कैसे हल करेगा? यह मसाएल आपको और हम सबको मिल कर ही हल करने हैं।

बताइये, क्या यह अज़ादारी खुद एक एहतेजाज नही है। क्या यह जुलूसे अज़ा एहतेजाजी जुलूस नही है। हम तो पैदा ही जुल्म के ख़िलाफ एहतेजाज करने के लिए हुए हैं, लेकिन एक बनाये हुए तरीक़े से अज़ादारी को सिर्फ एक रस्मी कारवायी तक घेरे रखने की साज़िश पर अमल हो रहा है और इस इबादत को रस्मी कारवायी में बदला जा रहा है।

अज़ादार जो पैदाईशी तौर पर एक इन्क़िलाबी होता है, धीरे–धीरे उसे शक्की बनाया जा रहा है। अज़ा ख़ाने जो इन्क़िलाब का मरकज़ हैं कुछ लोगों की जागीरें बनते जा रहे हैं। अपनी–अपनी जगहों पर भीड़ जमा करने के लिए तरह–तरह की चालें चली जा रही हैं और बाअमल आलिमों, ज़िम्मेदार ख़तीबों और ज़िक्र करने वालों के बजाय ऐसे लोगों को दावत दी जाती है जो न सिर्फ यह कि इल्मी तौर पर कमज़ोर होते हैं बल्कि अपनी कमज़ोरियों पर पर्दा डालने के लिए अज़ादारों और अज़ादारी के साथ खेल खेलते हैं।

अफसोस वाली बात यह है कि अगर कोई ऐसे धोका देने वाले लोगों के धोके को सामने लाना

चाहता है तो फौरन उसे शीओयत से निकालने और अज़ादारी के दुश्मन होने का सार्टिफिकेट दे दिया जाता है। हमारी मिल्लत को इतने तजुर्बों से गुज़रने के बाद इतना सादा नही होना चाहिए कि हर फायदा उठाने वाला, अहलेबैत से मुहब्बत की आड़ में उसे अपने मक़ासिद पूरे करने के लिए बेवकूफ़ बना दे।

यह एक ऐसी बात है जिस पर मुझे बड़ी एहतियात से क़लम उठाना पड़ रहा है, क्योंकि मैं जानता हूँ कुछ लोग इस तहरीर को सिर्फ इसलिए पढ़ेंगे कि इसमें कोई एक आधा ऐसा जुमला उन्हें मिल जाए जिसे वह ले उड़ें और लोगों के बीच उसे फैला कर मुझे अज़ादारी का मुख़ालिफ़ और न जाने क्या–क्या मशहूर करा दें।

ऐ अज़ादाराने हुसैन (अ0)! आप ऐसे दीन और ईमान बेचने वालों से हर वक़्त होशियार रहें जो आपके सामने बड़े अज़ादार और अहलेबैत (अ0) के बड़े चाहने वालों का रूप धारकर आते हैं और दीन व मिल्लत की पीठ में छुरा घोंपते हैं। उनकी हरकतें कुरैश के काफिरों के उन सरदारों से मिलती जुलती हैं जो खुदा के घर में बैठकर लोगों को खुदा से

गुमराह करते थे।

उनकी एक निशानी यह है कि यह हर वक़्त झगड़ा फैलाने पर उतारु रहते हैं। इख़्तेलाफात को हवा देना, ग़लत फहमियाँ पैदा करना, लोगों को शक में डालना, शक वाली चीज़ों को खुली चीज़ों से रद्द करना, अल्लाह के हुक्मों का मज़ाक़ उड़ाना, बेअमली का शौक़ दिलाना, वाजिबात के ख़िलाफ बेहूदा बकवास करना, ओलमा को तनक़ीद का निशाना बनाना, ईरानी एजेण्ट का लेबिल लगाना, दीन के फैलाने वालों को ज़लील करना, दीन की मानी हुई बातों का इन्कार करना यह सब उनके पसन्दीदा काम हैं। यह बात–बात में कुरैश के काफिरों का यह जुमला दोहराते हैं कि हम तो पहली बार देख रहे हैं या पहली बार सुन रहे हैं, हमारे बाप–दादा ने तो यह नहीं किया था। अज़ीज़ो! यह दीन का मसला है, हमें क़दम–क़दम पर मुहम्मद (स0) और आले मुहम्मद (अ0) की शरीयत की पासदारी करना है। और हमारा मक़सद हर इबादत से खुदा और अहलेबैत (अ0) की खुशी होना चाहिए न कि लोगों की।

ऐ आशिक़ाने हुसैन (अ0)! ज़रा ठण्डे दिल से ग़ौर कीजिये कि दीन किसी के बाप–दादा की सुन्नत का नाम है या खुदा के रसूल (स0) और पाक इमामों की तालीमात का नाम है? दीन को खुदा, रसूल (स0) और मासूम इमामों की तालीमात के साये में परखा जाएगा, न किसी के बाप–दादा के अमल की रौशनी में, और फिर बाप–दादा पर भी तो झूठा इल्ज़ाम है। क्या हमारे और आपके बाप–दादा यही काम अन्जाम दिया करते थे।

आप आज ही के दौर को देख लीजिये कि कितनी चीज़ें अभी कुछ सालों की पैदावार हैं जिनका हमारे बाप–दादा के अमल से कोई तअल्लुक़ नही है। मैं छोटी–छोटी बातों में पड़ना नही चाहता, आप खुद अज़ा के दिनों में देखते हैं कि अज़ादारी को अपने ज़ाती और जमाअती मक़सदों के लिए किस बेदर्दी से इस्तेमाल किया जाता है। क्या मिंबर से लेकर मातमी दस्तों तक मुक़ाबले बाज़ी नही है? और इस मुक़ाबले बाज़ी में हम हद से कितना आगे निकल जाते हैं; आप ज़रा सा ध्यान देंगे तो मेरी बात की सच्चाई साबित हो जायेगी।

मेरी बातों का बुरा मत मानिये। मैं आप ही का एक साथी हूँ और जो कुछ कह रहा हूँ, वह एक दर्द वाले दिल की पुकार है। यह तहरीर किसी शख़्स या जमाअत की हिमायत या मुख़ालिफ़त या दिल दुखाने के लिए नही लिख रहा हूँ, बल्कि खुद अपना हिसाब लेने के लिए और आपका ध्यान अपने–अपने हिसाब लेने की तरफ दिलाने के लिए लिख रहा हूँ। अपनी आने वाली नस्लों के इस सवाल के जवाब में लिख रहा हूँ जो कल सवाल करेंगे कि जब दीन में बदलाव का बाज़ार गर्म हो रहा था तो सब खामोश क्यों थे? इसलिए मैं हक़ बात कह कर मुँह और कानों पर खामोशी सजाए रखने के इल्ज़ाम को हटा रहा हूँ।

यहाँ लोगों का नाम लिए बिना एक वाक़िआ दुहराना ज़रूरी समझता हूँ कि कुछ दिनों पहले की बात है कि एक जगह ओलमा और मातमी अन्जुमनों के कुछ नुमाइन्दे इकटठा हुए। वहाँ एक मशहूर अहले मिंबर ने मातमी अन्जुमनों पर तन्क़ीद करना शुरु कर दी और ज़ोर इस बात पर था कि इस ज़माने में मातमी अन्जुमनें बुरे रास्तों की शिकार हैं।

इस पर वहाँ मौजूद मातमी अन्जुमनों के नुमाइन्दे ने एक ठोस जवाब दिया कि जनाब, हमारा काम है फर्शे अज़ा बिछाना, हम अज़ादारी के लिए ख़र्च करते हैं और पढ़ने वाले के मुँह माँगे दाम देते हैं, अब आप का काम है कि आप मिंबर से क्या देते हैं?

हक़ीक़त में सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी मिंबर वालों की है कि वह मिंबर से ख़ास तौर पर जवानों के सुधार का काम अन्जाम दें। क्या वजह है कि मजलिस के बीच जवानों का एक बड़ा हिस्सा इमामबारगाह से बाहर होता है और सिर्फ मसाऐब के बाद मजलिस में आता है? वजह यही है कि उन्हें मजलिस में कोई नई बात मालूम होने की उम्मीद नही है, या कोई दिलचस्पी नही है और कभी हालत इसके बिलकुल उलटी होती है। कुछ मजलिसों में बात तो कोई नई नही है, मगर पढ़ने वाले का अन्दाज़ ऐसा है कि वह अपने फन (Art) को दिखाकर हज़ारों की भीड़ को उठाता और बैठाता रहता है। बहुत ही माफी चाहूँगा अगर मेरा जुमला बुरा लगा हो, लेकिन मैं ऐसे कई लोगों को जानता हूँ जो सिर्फ इसलिए मज़हब को बदल कर बयान कर रहे हैं कि इसमें मेहनत कम

और आमदनी ज़ियादा है और यह तबसरे भी खुलेआम करते हैं कि इस क़ौम को बेवकूफ बनाना सबसे ज़ियादा आसान है। इन लोगों ने कोई ठोस काम करने के बजाय आम मोमिनों को मुनाज़रे (Debate) में उलझा दिया है और मिंबर को नफरतें फैलाने का ज़रिया (माध्यम) बना दिया है।

आज वह मिंबर जो अहलेबैत के मक़सद को फैलाने का सबसे बड़ा रास्ता है इसी से शीअयत की बुनियादें हिलाने की कोशिश की जा रही है। उस साम्राजी साज़िश पर अमल किया जा रहा है कि इनके मिंबर वालों को खरीद लो, ओलमा और मिल्लत के बीच दरारें डाल दो, गुमनाम और जाहिल लिखने वालों से बुनियादी अक़ीदों के खिलाफ लिखवाओ, शीअयत की ताक़त के सबसे बड़े सरचश्मे मरजेइयत पर गहरी चोट मारों और शीअयत को तबाह कर दो और अगर यह पूरी तरह तबाह न भी हो सके तो इसे सिर्फ रस्मो रिवाज तक ही घेर दो।

सदियों से साम्राज और साम्राजी गुमाशेते (काम करने वाले) मरजेइयत की ताक़त के आगे बेबस रहे हैं। आयतुल्लाह शीराज़ी की तम्बाकू हराम होने से

लेकर इस्लामी इन्क़िलाब के बरपा होने तक दुनिया गवाह है कि शीआ कितना ही बेअमल क्यों न हो लेकिन जब भी मरजेइयत, इस्लाम और शीअयत के बचाने के लिए मैदान में आई, पूरी मिल्लत जुग़राफियाई सरहदों का लिहाज़ किए बिना मराजेअ इज़ाम की हिमायत में आ गई और हर फ्रन्ट पर साम्राजी इरादों को नाकाम बना दिया।

आप अज़ादाराने हुसैन (अ0)! कर्बला की ''हल मिन नासेरिन यन्सुरना'' की आवाज़ का जवाब हैं। आप आज के ज़माने में अज़ादारी कि ज़रिए से हुसैन (अ0) की मदद में लगे हैं। एक हक़ीक़ी हुसैन (अ0) के एक सच्चे मदद करने वाले को यज़ीदी साज़िशों पर नज़र रखनी चाहिए। दुश्मन जानता है कि वह सामने आकर आपको हरा नही सकता, इसी लिए उसने मुनाफ़िक़त (Hypocrisy) का चोला ओढ़ लिया है और दीन व ईमान बेचने वाले लोगों के रास्ते से मरजेइयत के मक़ाम को चोट पहुँचा रहा है।

आप खुद सोचिये कि ग़ैबते कुबरा के ज़माने में अगर हम इस एक वहदत के मरकज़ से भी हाथ धो बैठे तो फिर हमारा क्या होगा? ग़ैबत के ज़माने में

कौन हमको रास्ता दिखायेगा? बेशक हमारा इमाम (अ0) हमारा हक़ीक़ी ज़िम्मेदार और रास्ता दिखाने वाला है लेकिन हम लोग वसीले के क़ायल हैं, क्या किसी भी ज़माने में ऐसा हुआ या हो सकता है कि इमाम (अ0) एक–एक शख़्स को रास्ता दिखाएँ? यक़ीनन बड़े मराजेअ वह वसीला हैं जिनके ज़रिए से इमामों के अहकाम तक हम पहुँच सकते हैं।

इस्तेमारी ताक़तें करोड़ों डालर ख़र्च कर रही हैं ताकि हमारी सफ़ों में बिखराव को हवा दी जा सके, हम बराबर छोटे–छोटे गिरोहों में बंटते चले जाएँ और फिर नाम निहाद जिहादी ताक़तों से हमारी हर आबादी को कर्ख़ बना दिया जाए।(1)

(1) बग़दाद की वह शीआ आबादी जिसे अब्बासियों के दौर में इस तरह बर्बाद किया गया था कि इसका नाम व निशान मिट गया। (ख़लीफा मोअ्तसिम बिल्लाह के दौर 640–655 हि0 में)

लेकिन मज़ालिम की इन वाक़ेओं से भी हमने इबरत नहीं हासिल की और यह वाक़ेआत तारीख़ की तह बतह गर्द में दब कर रह गये। हम पर यह ज़ुल्म का सिलसिला आज भी जारी है, और यह सिलसिला उस वक़्त तक जारी रहेगा जब तक हम कलमतुल–हक़ को बुलन्द करते रहेंगे, जब तक हम इस्लाम को

हुसैनी सिपाही को अपने बचाव की तरफ से इतना अन्जान नही होना चाहिए। अब जब कि हम चारो तरफ से ख़तरों में घिर चुके हैं, दुश्मन अन्दरूनी और बाहरी दोनों तरफ से बराबर हमें नुक़सान पहुँचा रहा है, हमें दोस्त और दुश्मन में पहचान करना पड़ेगी, हमें अपनी सफ़ों में छुपी हुई काली भेड़ों का रास्ता रोकना पड़ेगा।

सबसे ख़तरनाक चाल जो यह मुनाफ़िक़ इस्तेमाल करते हैं वह लोगों के जज़्बात को भड़काना

अपनी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा मक़सद बनाये रखेंगे, जब तक हम दुनिया पर दीन की हुक्मरानी की कोशिश जारी रखेंगे, जब तक साम्राजी और इस्तेमारी कुव्वतों की आँखों में आँखें डालकर दुनिया भर के मज़लूमों और कमज़ोरों की हिमायत जारी रखेंगे, जब तक हम सारी दुनिया पर इस्लाम का परचम लहराने की कोशिश करते रहेंगे, जब तक हम शैताने बुज़ुर्ग अमरीका की बरतरी का इन्कार करते रहेंगे और जब तक हम हर दौर के यज़ीद के ख़िलाफ एहतेजाज करते रहेंगे, हमारी अज़ादारी उस दौर के यज़ीद से लेकर आज के ज़माने के यज़ीदी फिक्र रखने वालों के ख़िलाफ बराबर एहतेजाज है इसलिये इस्लाम दुश्मन कुव्वतों का सबसे बड़ा निशाना ही अज़ादार और अज़ादारी–ए–सैय्यदुश्शोहदा हैं।

Exploite करना है। यह जानते हैं कि अज़ादारी और मौला के नाम पर हम जब चाहेंगे, जैसे चाहेंगे अज़ादारों को इस्तेमाल कर जायेंगे और यह कर रहे हैं कि अज़ादारी में अपनी मर्ज़ी की नित नई और जाहिलाना बातों को शामिल करके दूसरों को यह कहने का मौक़ा दे देते हैं कि यह अक़्ल, होश और समझ से ख़ाली वहम के पीछे भागने वालों की जमाअत है जिसका अक़्ल और समझ से दूर का भी वास्ता नही है।

मगर ऐ मातमी जवानों! यह कब तक होता रहेगा? क्या आप ग़ौर व फ़िक्र नही करते कि जो लोग इस तरह के हथ्कन्डे इस्तेमाल करते हैं वह खुद किस किरदार के मालिक हैं, खुद उनकी बातों और कामों में कितना टकराव है। इन काली भेड़ों को एक बड़ा फायेदा (Advantage) वह कुछ नाम के मुल्ला पहुँचाते हैं जो दीन के लिबास में दीन का सौदा करते हैं, यह मुनाफिक़ उन्ही मुल्लाओं के किरदार को लोगों के सामने लाकर मिल्लत को उलमा से गुमराह कर देते हैं।

इस बारे में तो मैं किताब के शुरु में अर्ज़ कर

चुका हूँ कि यह इस्लाम को न जानने वाली मुल्लाइयत इस्लाम के लिए ख़ास तौर से शीअयत के लिए एक बहुत बड़ी मुसीबत है। मुझे यक़ीन है कि मेरे मातमी जवान मेरी बातों को उसी ख़ुलूस की नज़र से देखेंगे जिस ख़ुलूस के साथ मैं खुदा को गवाह करके यह लिख रहा हूँ।

□□□

ख़तीबों, ज़ाकिरों, अदीबों और शोअ्रा-ए-किराम से!

जिस तहर हर लश्कर डिवीज़नों, पलटनों और दस्तों में तक़सीम होता है और हर दस्ते पलटन और डिवीज़न के दर्जा बदर्जा सालार (कमान्डर) होते हैं। आप मुकर्रम ख़तीब, बुज़ुर्ग ज़ाकिर, मुहतरम अदीब और बड़ी मन्ज़िलत वाले शायर हुसैनी लश्कर के दस्तों के सालारों की हैसियत के हामिल हैं।

यही मक़ाम हमारे मोहतरम नौहा ख़्वाँ हज़रात को हासिल है। आप कुछ देर के लिये यह तसव्वुर कर लीजिये कि आपको एक दस्ते का सरदार मुक़र्रर कर दिया गया है, तो आप अपने दस्ते की सालारी कैसे करेंगे? आप सब अहलेबैत (अ0) के ख़िदमत गुज़ार हैं। आप पर इस लश्कर को तैयार करने की

संगीन ज़िम्मेदारी है, आप सब अपने–अपने मैदान के सालार हैं। आपका कुव्वते बयान, आपकी तहरीर, आपका कलाम, आपका अन्दाज़े बयान, आपकी ख़ूबसूरत आवाज़, यह सब आपके पास ज़हरा (अ0) की अमानत हैं।

बारगाहे हुसैनी से आपको और हमकों जो इज़्ज़त व वक़ार अता हुआ है, वह दुनिया की किसी बारगाह या दरबार से नहीं मिल सकता, फिर हम इस अज़ीम नेअ्मते इलाही का शुक्र कैसे अदा करें? नेअमत के शुक्र का बेहतरीन तरीक़ा यह है कि इस नेअ्मत को उन्हीं की ख़िदमत में लगाया जाये जिनकी यह अता है। अपनी जवान नस्ल की तरबियत की ज़िम्मेदारी किसी एक फ़र्द या एक आलिम की नहीं है बल्कि यह तो हम सब की मुश्तरका ज़िम्मेदारी है, उनकी ज़िम्मेदारी है जो शुअूर व आगाही की दौलत से मालामाल हैं जो सीने में दर्दे मिल्लत रखते हैं।

आपके पास मिंबर है, आपके पास क़लम है, आपके पास फ़िक्र है, ज़ोरे बयान है, आवाज़ है। यह सब वक़्फ़ कर दीजिये मिल्लत के हालात बदलने के

लिये। एक शोहरत वक़्ती और ज़मानी है और एक हमेशा की और न ख़त्म होने वाली है, एक इज़्ज़त सिर्फ दुनिया तक महदूद है और एक इज़्ज़त दुनिया व आख़िरत को घेरे हुए है। एक बार हम सिर्फ लोगों के सामने इज़्ज़त पाकर ख़ुश हो जाते हैं और एक बार ख़ुदा व रसूल (स0) और अईम्म–ए–मासूमीन के सामने बाइज़्ज़त होने की बात है।

यह फैसले की घड़ी है कि हमें कौन सी शोहरत, इज़्ज़त और सरबुलन्दी चाहिये। सही है कि राहे हक़ बहुत मुशकिल और दुश्वार गुज़ार है, सख़्त है, इम्तिहान वाली है। मगर क्या हमारे पास उसव–ए–हैदरे कर्रार और कर्बला वालों का किरदार नहीं है? अगर वाक़ओ हम कर्बला वाले हैं और हुसैनी अक़ीदे के पक्के हैं तो हमें इसी सख़्त और दुश्वार गुज़ार रास्ते को चुनना होगा जो अबुज़रे ग़फ्फारी (रज़ि0), मीसमे तम्मार (रज़ि0) और क़ंबर (रज़ि0) जैसे अली (अ0) के गुलामों ने किया था। उस राह पर चलना पड़ेगा जिस राह पर चलकर हबीब इब्ने मज़ाहिर सारी रुकावटें पार करके अपने मौला के क़दमों में पहुँच गये थे, उस तरह अपने आपको अन्धेरों से निकालना पड़ेगा जिस

तरह हुर (अ0) अन्धेरों से निकल कर नूर की तरफ गया था।

आज इन्तिहाई माज़ेरत और अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि बाज़ जगह हमारे मिंबर का मेअ्यार इन्तिहाई गिर चुका है, आदाबे मिम्बर को कोई पास नहीं रहा है इल्मी सतह इस हद तक गिर चुकी है कि बाज़ अहले मिंबर तशैयुअ के बुनियादी अक़ाएद से भी ठीक तरह आगाही नहीं रखते। सारा ज़ोर सिर्फ अन्दाज़े बयाँ और चन्द रटे हुए वाक़ेआत को बार–बार घुमा फिरा कर पेश करने पर होता है। यह Formal मजालिस हम में इंक़िलाबी रूह बेदार नहीं कर सकतीं। किरदार साज़ी मिंबर का हक़ है। हुसैन (अ0) ने हमें तारीख़ में ज़िन्दा रखा है तो हमारा भी फ़र्ज़ है कि उसव–ए–हुसैन (अ0) मक़सदे हुसैन (अ0) और मनशूरे हुसैन (अ0) को ज़िन्दा रखें।

एक मस्जिद में नमाज़ की इमामत करने के लिये पेश इमाम के लिये कितनी शरायत रखी गयी हैं, मगर मिंबर पर बैठकर हज़ारों इन्सानों के ज़हनों पर हुकूमत करने वाले के लिये हम किसी शर्त के

क़ायल और पाबन्द नहीं हैं। ऐसा क़तअन नहीं होना चाहिये और इस सिलसिले में बानियाने अज़ा पर भी भारी ज़िम्मेदारी आयद होती है। फर्शे अज़ा बिछाना सिर्फ रसमी कारवायी नहीं है और न ही सिर्फ मजमा इकटठा करना मक़सूद होता है बल्कि फर्शे अज़ा बिछाने का मक़सद एक तरफ ग़म मनाना और दूसरी तरफ पैग़ामे हुसैनी (अ0) को दुनिया तक पहुँचाना है।

अब आज के दौर में हम यह पैग़ाम किस तरह पहुँचायें? यक़ीनन जब तक हमारे अहले मिंबर अपने बयान को जदीद दौर के तक़ाज़ों से नहीं जोड़ेंगे, बदलती हुई इक़दार का लिहाज़ नहीं करेंगे, समाजी रिश्तों का पास नहीं रखेंगे। किस तरह यह उम्मीद की जा सकती है कि लोग हमारी मजलिसों का रुख़ करें। हमारा अन्दाज़ तो ऐसा होना चाहिये कि लोग ख़ुद बख़ुद खिंच कर मकतबे अहलेबैत की तरफ आ जायें न कि उनके दिलों में नफरतें बोई जायें। यह ठीक है कि सारी दुनिया ने न तो कभी हक़ को तस्लीम किया है और न सबने साथ दिया है लेकिन हमें तो अपनी ज़िम्मेदारी बड़े अच्छे तरीक़े से पूरी

करना होगी।

इस सिलसिले में क्या करना चाहिये? अभी आधी सदी पहले तक लखनऊ में ऐसी एकेडमी मौजूद थी (और मेरी इत्तेलाआत के मुताबिक़ बरसों की बर्बादी के बाद एक बार फिर इस एकेडमी को नई ज़िन्दगी मिली है) जहाँ ऐसे वाइज़ और ख़तीब तैय्यार किये जाते थे जो मिंबर पर जाकर पूरी ज़िम्मेदारी का मुज़ाहेरा करते थे। मदरसतुल वाइज़ीन, नाज़मिया और सुलतानुल मदारिस लखनऊ, माज़ी में यह ख़िदमात अन्जाम देते रहे हैं।

यहाँ भी हमें वाइज़ीन और ख़ुतबा के लिये एक ऐसी एकेडमी क़ायम करना पड़ेगी जो चन्द साल तक बासलाहियत अफराद की तरबियत के फ़रीज़े को अन्जाम दे और उन्हें बाक़ायदा सनद देकर फारिग़ किया जाये ताकि वह समाज की ज़रूरतें को पूरा कर सकें। और यह जो आज–कल (Shortcut) मुख़्तसर रास्ता निकला हुआ है कि किसी भी मशहूर ज़ाकिर की चन्द कैसिटों को रटरटा लगाकर या चन्द जाने–पहचाने ख़ुतबा की मजालिस याद करके

अल्लामा का लेबल लगवा लिया। न पढ़ने की ज़रूरत और न ही मदरसे की हाजत। (हक़ीक़ी ख़ुतबा और ज़ाकिरीन मेरी इस बात के मिस्दाक़ नहीं हैं) जहाँ अज़ादारी पर हम करोड़ों बल्कि अरबों रुपये ख़र्च करते हैं वहीं ऐसी एकेडमी और ऐसे मदारिस का क़याम भी अज़ादारी ही की ख़िदमत का हिस्सा हैं वरना जिस डगर पर आज हमारा मिंबर चल रहा है अगर सूरते हाल के आगे बाँध न बाँधा गया तो कुछ अरसे के बाद मिंबर का अल्लाह ही हाफिज़ होगा।

हमारे बाज़ सूबों में तो यह हाल है कि गाने बजाने वाले मुहर्रम में गाना बजाना छोड़कर मिंबर पर कूदना शुरु कर देते हैं और उन्हें यहाँ ज़ियादा पज़ीराई मिलती है और बक़ौल उनके, गाने बजाने से ज़ियादा उन्हें यहाँ इन दो माह में इज़्ज़त, शोहरत और दौलत मिल जाती है। लेकिन सवाल यह है कि इन सबके बदले उन्होंने इस क़ौम को क्या दिया? तारीख़ी वाक़ेआत को बिगाड़कर पेश करना, गढ़ी हुई रिवायात को पेश करके वाक़ेआ–ए–कर्बला को दुनिया की नज़रों में मश्कूक बनाना और अपनी बेअमली की तौजीह व तावील पेश करने के लिये सारी क़ौम को

बेअमली की राह पर चलने की दावत देना।

कैसे कैसे लोग, मिंबर पर नज़र आने लगे
ज़ेरे मिंबर बैठिये, तौहीने मिंबर देखिये

आप इस क़ौम के दानिश्वर (Intellectual) हैं आपको ही क़ौम को इस दलदल से निकालना है। ख़ुदा भी किसी क़ौम की तब ही मदद करता है जब वह ख़ुद अपनी मदद के लिये तैय्यार हो।

आइये हम सब मिलकर अह्द करें कि अपने अह्दे वफा को पूरा करेंगे, अपनी ज़िम्मेदारियों को सही तरह पूरा करेंगे और इस मज़लूम मिल्लत के ख़िलाफ होने वाली हर साज़िश को नाकाम बना दें, आइये अपने छोटे–मोटे इख़्तेलाफात को भुला दें, इस तरह सफ़बन्दी कर लें जैसे सीसा पिलाई हुई दीवार बल्कि कर्बला की दीवार जिससे टकराकर यज़ीदियत पाश–पाश होती रही है और होती रहेगी।

□□□

कनीज़ाने सैय्यदा व ज़ैनब सलामुल्लाहि अलैइहुमा से.....

अज़ादारी–ए–सैय्यदुश्शोहदा के फ़रोग़ में आपका हिस्सा मर्दों से कम नहीं है बल्कि बाज़ जगहों पर आप मर्दों से भी पेश–पेश नज़र आती हैं।

आपने कभी सोचा कि मर्दों से ज़ियादा आप नसलों की ज़हनी और जिसमानी परवरिश की ज़िम्मेदार है? हर बच्चा माँ से इसी लिए ज़ियादा मानूस होता है कि वह तरबियत के इब्तेदाई दौर का बड़ा हिस्सा माँ के साथ गुज़ारता है, घर में होने वाली तमाम बातों का बराहे रास्त असर लेता है और यह तमाम बातें उसके दिल पर मरते दम तक अपने नक़्श बरक़रार रखती हैं। आप जो

कुछ भी अपनी औलाद को देंगी वही आपकी औलाद आगे बढ़ायेगी। इन्सान पर मज़हब का उभरने वाला नक़्श माँ की आग़ोश में सब्त होता है।

इसी लिए हम देखते हैं कि वह शादी की रुसूमात हों या अज़ादारी की, किसी के सोएम, चहल्लुम का मसला हो या मीलाद व मजलिस का, ख़्वातीन के नुकूश व असरात इतने गहरे हैं कि मर्द इन मामलात में भी ख़्वातीन की तक़लीद करते हैं जो सरासर बातिल हैं। आज हमारे मुआशरे में दो शरऐं राएज हैं एक शर–ए–मुहम्मदी और दूसरी शर–ए–निस्वाँ। यानी ख़वातीन की अपनी ईजाद की हुई शरअ कि मसलन सोएम किस दिन होना चाहिए और चहल्लुम किस दिन होना चाहिए, मेंहदी माँझा के बग़ैर शादी का तसव्वुर अधूरा है, मर्द ने सेहरा ही न बाँधा तो निकाह कैसे होगा, गुज़शता साल तबर्रुक में हलीम बाँटा गया था अगर इस बार न बाँटा तो मौला नाराज़ हो जाएंगे। फलाँ इमाम बारगाह

पर मन्नत जल्दी पूरी होती है और फलाँ जगह के अलम पर मुराद जल्दी आती है, तो क्या सारी इमामबारगाहें इमाम हुसैन (अ0) की नहीं हैं और क्या सारे अलम हज़रत अब्बास अलमबरदार से मन्सूब नहीं हैं? नजफ, मशहद, कर्बला और दीगर मज़ाराते मासूमीन को छोड़कर जिनकी ख़ास फ़ज़ीलतें रिवायात में वारिद हुई है तमाम इमामबारगाहें, तमाम अलम, तमाम ज़ियारात, मुक़द्दस और मुतबर्रिक हैं।

अपनी मोहतरम माओं बहनों से इन्तिहाई माज़ेरत के साथ इतनी गुज़ारिश है कि अपनी शरअ न बनायें बल्कि शर–ए–मुहम्मदी और फ़िक़्हे जाफरी को समझने की कोशिश करें। आपकी ज़ईफुल एतक़ादी और तवह्हुम परस्ती का नतीजा यह निकलता है कि मफ़ाद परस्त लोग पहले आप पर ही हाथ डालते हैं और जो बात भी मशहूर करवानी हो चन्द ख़्वातीन तक उसका पहुँचा देना काफ़ी होता है। बाज़ औक़ात महज़ मजमा इकटठा करने की ख़ातिर अहले बैत (अ0)

के नाम को आड़ बनाकर आपको इस्तेअ्माल कर लिया जाता है।

ख़्वाबों के सिलसिले को ही ले लीजीये। रोज़ कोई न कोई ख़्वाब देखता है कि उसे बशारत हुई है कि यह करो, किसी को बशारत हुई है वह करो। बात साफ और वाज़ेह है, किसी भी आम इन्सान का ख़्वाब दूसरे इन्सान के लिए हुज्जत नही है। यह कोई मासूम का ख़्वाब नहीं है कि इस पर हर शख़्स अमल अन्जाम दे। आपने ख़्वाब देखा है आप ज़िम्मेदार हैं। आपका ख़्वाब हुक्मे खुदा या वही–ए–इलाही नही है जिस पर अमल करना दूसरों पर भी वाजिब हो।

हमारा मज़हब ख़्वाबों की दुनिया का मज़हब नही है यह हक़ीक़ी दुनिया में अमल के लिए आया है। तो आप ऐ कनीज़ाने जनाब सैय्यदा (स0) व जनाब ज़ैनब(अ0)! खुदा रा अपने अज़ीम मक़ाम को पहचानें, आपको अपनी आग़ोश में इमाम के सिपाहियों की तरबियत करना है, इस लिए आपकी खुद अपनी तरबियत और अमली सलाहियत इतनी होनी चाहिए

कि आप दूसरों को जह्ल और गुमराही से बाहर निकाल सकें।

कर्बला में मौजूद बीबियों ने किस तरह अपने राजदुलारों को मौत के हवाले कर दिया था और उनके बच्चे भी किस तरह खुशी–खुशी शहादत हासिल करने के लिए तीरों और तलवारों पर टूट पड़े थे, यह जज़्बा हुसैन (अ0) की हक़ीक़ी मारेफत की वजह से पैदा हुआ था।

आज भी मज़हब व मिल्लत को ऐसी ही आग़ोश की ज़रूरत है जो अपनी गोद में मुख़्तार सिफत बच्चों की परवरिश करें, उन्हें तवह्हुम परस्त माहोल में पालने के बजाए मुजाहिद बनने का दर्स दें, उन्हें लोरियों में शहीदों और दिलेरों की दास्तानें सुनायें ताकि जब दीन पर वक़्त पड़े तो यही दिलेर माओं की आग़ोश के परवरदा बच्चे क़हरे इलाही बनकर दुश्मन पर टूट पड़ें और कर्बला की माओं की तरह उनकी माएँ भी खुदा की बारगाह में सुर्ख़ुरू हो जायें।

ऐ कनीज़ान ज़ेहरा (स0) और पैरवान ज़ैनब व उम्मे कुलसूम (अ0)! यही वह वक़्त है जब आपको कई क़दम आगे बढ़कर काम करना होगा। औरत की बेहतरीन मस्जिद उसका घर है, औरत की जन्नत उसका नशेमन है, औरत की ज़ीनत व ज़ैन उसका शौहर और उसके बच्चे हैं, लेकिन जब भी क़ौम व मज़हब पर वक़्त पड़ा मर्दों का हौसला बढ़ाने के लिए उनकी ग़ैरत व हमिय्यत को जगाने के लिए इन्ही ख़वातीन ने मिसाली किरदार अदा किया है।

तारीख़ के हर–हर मोड़ पर चाहे नुबवत की इमदाद का मसला हो, चाहे इमामत के हक़ के दिफाअ का मामला हो, चाहे दरबार हो, चाहे बाज़ार, हर जगह यही कमज़ोर औरत बातिल की शिकस्त का सामान बन गई, यही औरत एक ख़ातूने ख़ाना से मर्दे मैदान में तबदील हो गई।

आज आपको अपना किरदार तय करना पड़ेगा। कैसी ज़िन्दगी गुज़ारी जाए? ज़मीन पर रेंगने वाले करोड़ों अरबों कीड़ों की मानिन्द जो दुनिया में

आए, माद्दी ज़रूरतों को पूरा किया और चले गये। नाम व निशान तक मिट गया, जैसे कि बेशुमार लोग ऐसी ही ज़िन्दगी की आरज़ू करते हैं जो सिर्फ माद्दी ख़्वाहिशात की तकमील तक महदूद होती है और उन ख़्वाहिशात को पूरी कर लेने को वह ज़िन्दगी का हासिल जानते हैं या आप ऐसी ज़िन्दगी चाहती हैं जो कभी न ख़त्म होने वाली हो यानी हयाते अबदी।

यक़ीनन हर अक़्ल वाला ऐसी ही ज़िन्दगी की ख़्वाहिश करेगा जो तूलानी हो। तो यह हयाते अबदी जो दुनिया व आख़िरत में इज़्ज़त व सरबुलन्दी लिए हुए है, हर इन्सान को हासिल नही होती है, यह चन्द ही खुशक़िस्मत होते हैं जो हर दौर में हासिल कर पाते हैं और इस हयाते अबदी को हासिल करने के लिए बहुत कुर्बानियाँ भी देना पड़ती हैं। कर्बला की ख़्वातीन की मिसाल आपके सामने है, उन ख़्वातीन ने गोद के पालों को कुर्बान किया, बेसरो सामानी के आलम में क़ैद व बन्द की तकलीफें झेलीं मगर क़यामत तक के लिये

ज़िन्दा–ए–जावेद हो गयीं। कल दीन की नुसरत के जुर्म में उनके सर बेचादर किये गये थे मगर आज सारी इन्सानियत उनका नाम आते ही सर झुका लेती है।

□□□

मुख़्तलिफ तनज़ीमों के कारकुनों से!

जैसा कि लफ़्ज़े तनज़ीम (Organization) ही ज़ाहिर है कि हर तनज़ीम किसी गिरोह, बिरादरी या क़ौम को मुनज़्ज़म करने के लिये वजूद में आती है, चाहे वह मज़हबी हो या सियासी। हर तनज़ीम मख़सूस ख़यालात और फिक्रें रखने वाली होती है फिर धीरे–धीरे एक ही नज़रिये को फैलाने वाले लोग ''नज़रियाती इख़्तेलाफात'' की बुनियाद पर मज़ीद तनज़ीमों में तक़सीम हो जाते हैं और जहाँ सूरते हाल बदतर हो जाती है वहाँ हमारे मुल्क का नक़्शा बन जाता है।

चाहे ख़ालिस सियासी जमाअतें हों या मज़हबी जमाअतें सबका एह ही हाल है। यहाँ तक कि तास्सुबात और तफरक़ेबाज़ी के ख़िलाफ लड़ने वाले लोग ख़ुद अपने तनज़ीमी दायरे में इतने तंगनज़र

और मुतअस्सिब हो जाते हैं कि उन्हें अपनी तनज़ीमी दायरे से बाहर हर शख़्स ग़द्दार और बातिल नज़र आता है। मज़हबी जमाअतों में सूरतेहाल यह होती है कि उन्हें अपने ख़ोल से बाहर का हर फ़र्द दीन का दुश्मन और बेदीन दिखायी देता है, मुनतज़ेमीन धीरे–धीरे तनज़ीम को दीन के गिर्द घुमाने लगते हैं और यह तनज़ीमें एक बुत की शक्ल इख़्तियार कर जाती हैं।

हाल यह हो जाता है कि तनज़ीम का मन्शूर और दस्तूर जो कि आयात इलाही नहीं है उसे ही सब कुछ समझ लिया जाता है और इसमें भी अपनी मर्ज़ी और मफ़ादात के पेशनज़र इतनी तरमीमें और तबदीलियाँ ले आयी जाती हैं कि वह एक मख़सूस फर्द या गिरोह के इक़तेदार का मुहाफिज़ बन जाता है। यहीं से तनज़ीमों का शीराज़ा (Bonding) बिखरना शुरु हो जाता है जो असल में ख़ुद क़ौम का शीराज़ा बिखेरने का सबब बन जाता है और फिर वह लोग जो घर से साम्राज के मुक़ाबले के लिये निकले थे, आपस में मुक़ाबला करते नज़र आते हैं और साम्राज अपनी कामयाबी पर मुसकुराता नज़र आता है।

कम से कम हमारे मुल्क की सियासी और मज़हबी जमाअतों की यही तारीख़ है कि इनकी कहानी नज़रियात से शुरु होकर अफराद पर ख़त्म हो जाती है।

अगर हम दायरे को और महदूद करें और सिर्फ अपनी मिल्लत के तनज़ीमी सफ़र पर नज़र डालें तो हमें यह बात वाज़ेह तौर पर नज़र आ जायेगी कि इस्तेअ्मार के मुक़ाबले पर निकलने वाली क़ौम किस तरह इस्तेअ्मारी साज़िश का शिकार हो गयी और इस्तेअ्मारी गुमाश्तों ने किस तरह हम से अंधेरे में हमारे सारे काम को अग़वा कर लिया।

इख़्तेलाफी मसाएल में उलझे बग़ैर अपनी मिल्लत की तनज़ीमों के कारकुनों से मेरी यही अपील और दरख़्वास्त है कि तनज़ीमें क़ौम की कामयाबी के लिये बनायी जाती हैं, चन्द अफ़राद के लिये नहीं। अफ़राद की जंग लड़ें तो हमें सिवाय नुक़सान के कुछ भी हाथ नहीं आयेगा। हमारी तनज़ीमों के क़ाएदीन (नेताओं) की क़ौम से ख़ुलूस उस वक़्त साबित होगा जब वह क़ौम के लिये लड़ेंगे, मन्सब व मक़ाम के लिये नहीं। आप यह देखिये कि आप जिसके साथ

हैं, वह मक़ाम परस्त है या मन्सब को अपनी ठोकर में रखता है। वह दुनिया के पीछे भाग रहा है, या दुनिया उसके पीछे भाग रही है? यहाँ तो यह हाल है कि वह लोग भी क़यादत के दावेदार है जिनके साथ चन्द अफराद नारे लगाने वाले होते हैं।

आप अपनी ख़ूबियों को किस लिये इस्तेमाल कर रहे हैं क़ौम व मज़हब के लिये या शख़्सियात के बचाव के लिये? यह बहुत अहम है कि एक कारकुन के लिये कि वह यह फैसला करे कि अपने मज़हब व मिल्लत से अह्द किये हुए (Committed) है या किसी फ़र्द से। एक मज़हबी कारकुन उस वक़्त तक किसी शख़्स से जुड़ा रहता है, जब तक उसे यक़ीन हो कि यह शख़्सियत भी मज़हब व मिल्लत से अह्द किये हुए (Committed) है। मगर जब सामने आ जाये कि किसी शख़्सियत की वफादारियाँ मज़हब व मिल्लत से नहीं बल्कि अपनी ज़ात से जुड़ी हैं तो फिर कोई जवाज़ नहीं रह जाता कि उसका साथ दिया जाये।

□□□

निशाने राह

मिल्लत के अज़ीज़ जवानों! अब आख़िर में राहे हल की तरफ आना चाहता हूँ, इन भूतों से मुक़बले की राह जिनकी तरफ शुरु में इशारा कर चुका हूँ।

हर अन्जुमन, ट्रस्ट, इदारा या तनज़ीम मज़हब की ख़िदमत के लिये वजूद में आती है, अगर यही अन्जुमन, ट्रस्ट, इदारा या तनज़ीम किसी फर्द की जागीर बन जाये तो फिर किसी सच्चे कारकुन के अच्छा नहीं है कि वह दीन छोड़कर अफ़राद की तक़वियत का बाइस बने।

मौजूदा सूरते हाल में मुमकिन नहीं कि तमाम अन्जुमनों, ट्रस्टों और इदारों व तनज़ीमों को तोड़कर कोई एक तनज़ीम बना ली जाये, मगर यह तो हो सकता है कि तमाम तनज़ीमों वग़ैरा पर मुशतमिल एक मुशतरका और मुत्तहेदा (Common & United)

प्लेटफार्म बना लिया जाये, क्योंकि जब तक सारी क़ौम शरीक न हो कोई मक़सद हासिल नहीं किया जा सकता और कोई एक तनज़ीम ऐसी नहीं है जो सारी क़ौम की नुमाइन्दगी का हक़ीक़ी दावा कर सके। एक ऐसी क़ौमी पार्लियामेन्ट या फोरम बनायी जाये जहाँ सारी तनज़ीमों की नुमाइन्दगी हो। यह फोरम या पारलीमेन्ट दो–दो या तीन–तीन साल के लिये एक मजलिसे अमल चुने, यह मजलिसे अमल इतने ही अरसे के लिये एक सिक्रेटरी जनरल चुने। इस प्रोसेस से गुज़रने के बाद इस मजलिसे अमल को न सिर्फ सारी क़ौम का एतेमाद बल्कि सारी क़ौम की पुश्तपनाही भी हासिल होगी।

इस मजलिसे अमल के अफ़राद मुख़तलिफ शोबों की सरपरस्ती संभालेंगे और कामों की तक़सीम की एक बेहतरीन शक्ल सामने आयेगी हमारे अन्दुरूनी इख़्तेलाफात भी इस फ़ोरम में रखे जायें और फिर इस फोरम के फैसले को हतमी (फ़ाइनल) फैसले के तौर पर तस्लीम किया जाये।

यक़ीनन, यह बात काग़ज़ पर तहरीर करना

बहुत आसान और अमल के मैदान में इसका वाक़ेअ होना बहुत मुशकिल है। मुझे भी यह तस्लीम है कि यह बहुत मुशकिल है मगर नामुमकिन नहीं, इसी लिये मैंने अपनी इस तहरीर को निशाने राह क़रार दिया है, मंजिल नहीं, हमारी क़ौम में ऐसे–ऐसे मुफ़क्किर और दानिश्वर हज़रात मौजूद हैं जो मेरे ख़याल के इस क़तरे को समुद्र में तबदील कर सकते हैं।

मुख़तलिफ सियासी जमाअतों और सरकारी इदारों में हमारे बेशुमार ऐसे दिमाग़ मौजूद हैं जो मन्सूबाबन्दी के माहिर हैं, लेकिन अफ़सोस कि हमारे पास ऐसा कोई फोरम मौजूद नहीं जहाँ उन की ख़िदमात ली जा सकें और उनकी सलाहियतों से फ़ायदा उठाया जा सके। जब हम कोई फोरम तश्कील देंगे और उन्हें एतेमाद देंगे तो फिर देखिये कि कुछ अफ़राद को आप तलाश करेंगे और कुछ ख़ुद ही दीन व मिल्लत की ख़िदमत के जज़्बे में डूबे हुए आपके पास आ जायेंगे।

आप क़ौम के सरकरदह अफराद को मजबूर करें कि वह ज़ातियात की दुनिया से बाहर आकर

क़ौम पर पड़े इस कड़े वक़्त में मैदाने अमल में उतरें। माज़ी की तलख़ियाँ और ग़लतफहमियाँ मिटाकर बेहतर मुस्तक़बिल की जद्दोजेहद करें, वरना आने वाली नसल हमें माफ नहीं करेगी और दुनिया तो दुनिया मैदाने हश्र में भी हम उनसे मुँह छिपाते फिर रहे होंगे।

वमाअलैना इल्लल्बलाग़

□□□

एक ख़त सबके नाम

हम्द उस परवरदिगार के लिये जिसने इन्सान को पैदा करने से पहले उसकी ज़रूरत की हर शै को पैदा किया। जब इस आलम को नेअ्मतों से पुर कर दिया तो फिर इन्सान को सोचने समझने की सलाहियत देकर हिदायत और गुमराही की राहों से अपने अम्बिया और मुरसलीन अलैइहिमुस्सलाम के वसीले से रोशन करके अपनी ख़ास हिकमत के तहत दुनिया में भेज दिया। और फिर मुसलसल उस पर नेअ्मतें नाज़िल कर रहा है।

बेइन्तिहा दुरूद व सलाम उस ताहिर व मुतह्हिर (पाक करने वाली) हस्ती पर जिसे परवरदिगार ने अपना महबूब (प्यारा) क़रार दिया और सारे आलमीन के लिये मुजस्सम रहमत, मुहब्बत और शफक़त बनाकर क़यामत तक आने वाले इन्सानों के लिये नमून–ए–अमल क़रार दिया, इसके वसीले से मज़लूम

बेकस और लाचार इन्सानों को सरबुलन्दी अता की और अपनी बेहतरीन उम्मत क़रार दिया।

बेशुमार दुरूद व सलाम पैग़म्बरे इस्लाम (स0) की आले पाक पर जिन पर दुरूद भेजे बग़ैर नमाज़ जैसी इबादत को नामुकम्मल क़रार दिया, बेइन्तिहा सलाम रसूल (स0) के उन जानिसार असहाब पर जो पैग़म्बरे अकरम (स0) की एक आवाज़ पर अपनी जान निछावर करना अपना फरीज़ा जानते थे।

मैं यह ख़त हवाए नफ़्सानी के इत्तेबाअ या सस्ती शोहरत या किसी दुनियावी फायदे की ग़र्ज़ से तहरीर नहीं कर रहा हूँ, बल्कि मादरे वतन की जो मुहब्बत मेरे ख़ून में रची–बसी हुई है और अपने दीन से जाँनिसारी का जो अह्द नस्लन बाद नस्ल मेरे क़ल्ब व रूह में मुनतक़िल हुआ है, यह मुहब्बत और अह्द मुझे इस बात पर उकसा रहा है कि अगरचे सहरा में अज़ान देने का कोई फायदा नहीं लेकिन सहरा में दी हुई अज़ान की गूँज भी कभी ख़त्म नहीं होती, वहीं घूमती रहती है, इस इन्तिज़ार में कि कभी तो कोई उससे मुहब्बत करने वाला उस सहरा में गुज़रेगा और उस अज़ान की आवाज़ पर 'हाज़िर हूँ' कहेगा।

तारीख़ के सफहात क़ौमों की उठान व ज़वाल की दास्तानों से भरे पड़े हैं शायद ही इस ज़मीन का कोई हिस्सा ऐसा हो जिसे कभी ऊँचाई का नशा और ज़वाल का ज़ायक़ा न चखना पड़ा हो, लेकिन हर दौर में चाहे कोई क़ौम ऊँचाई की तरफ बढ़ती जा रही हो या नीचे की तरफ गिरती जा रही हो, माद्दी तरक़्क़ी ही उठान का बाइस बनी और यही माद्दी तरक़्क़ी ज़वाल का भी बाइस बनी। एहरामे मिस्र (मिस्र के पिरामिड) और दीवारे चीन इस की मुँह बोलती तस्वीर हैं। इसका सबब यह है कि जब इन्सान तरक़्क़ी राह पर चल पड़ता है तो उसका सारा ध्यान माद्दी तरक़्क़ी और माद्दी इक़तेदार पर ठहर जाता है। यही माद्दापरस्ती उसे दूसरों पर जुल्म और उनके हुकूक़ को बर्बाद करने पर उकसाती है। कामियाबियों और इक़्तेदार का नशा उसे बहका देता है और जिस इक़्तेदार को वह कामियाबी की आख़री मंज़िल समझता है, अस्ल में वह उसकी बर्बादी की शुरुआत का नुक़्ता होता है और जब वह एक बार पस्ती और ज़िल्लत से दोचार हेाता है तो हैरान रह जाता है, उसकी समझ में नहीं आता कि

ऐसा क्यों है, उसके अन्दाज़े और हिसाब किताब क्योंकर ग़लत हुए? ऐसा इसलिये होता है कि वह बुलन्दी के दौर में यह भुला बैठता है कि वह सिर्फ एक ख़ाक का पुतला नहीं है बल्कि उसे ख़ाक के पुतले की शक्ल देने के बाद ख़ालिक़े दो जहाँ ने उसमें रूह भी फूँकी थी, वह एक माद्दी पैकर होने के साथ–साथ रूहानी पैकर भी है। वह माद्दी ज़रूरतों का तो ख़याल करता है लेकिन रूहानी ज़रूरतों से ग़ाफिल हो जाता है, नतीजे में तबाही और बर्बादी में पड़ जाता है। क़ौमों की तबाही और बर्बादी की दास्तानों में यह एक बुनियादी नुक्ता है जिसे लाशुऊरी तौर पर मोअररिख़ीन (इतिहासकारों) ने तहरीर तो जगह–जगह और अलग–अलग अन्दाज़ से कर दिया, मगर उसे तस्लीम करने में भी वही माद्दा परस्ती आड़े आती रही है या फिर मोअररिख़ों ने इस रूहानी पहलू को ध्यान देने के क़ाबिल ही नहीं जाना।

हम वह बदनसीब क़ौम हैं जो माज़ी में न सिर्फ शानदार उठान के साथ सादियाँ गुज़ार चुकी है, बल्कि क़ुदरत ने हमें सम्भालने के लिये बहुत से मौक़े

दिये मगर हम बराबर नेअ्मत का इन्कार ही करते रहे।

परवरदिगारे आलम की इन ही मुसलसल नेअ्मतों में से एक बड़ी नेअ्मत यह ख़ुदा की ममलकते पाकिस्तान है जो हमारी नाक़द्री और नाअहली के बाइस ज़ख़्मों से चूर अपनी और हमारी बर्बादी पर ख़ून के आँसू बहा रही है।

आज नौबत यहाँ तक पहुँच चुकी है कि कुफ्फार व मुशरिकीन के हाथों अपनी दीन व ज़मीर का सौदा करन वाले लोग सियासी और मज़हबी भेड़ियों की शक्ल में खुद पाकिस्तान के वजूद और इसकी बुनियादों पर हमला आवर हैं।

इस मुख़्तसर सी तम्हीद के बाद अब मैं सरकारी इदारों में मौजूद नीचे से ऊपर तक ज़िम्मेदार अफ़राद से जो बातें करना चाहता हूँ उसके लिये ख़ुले दिमाग़, इस्लीमी हमदर्दी और ईमानी ग़ैरत की ज़रूरत है। हर तरफ़ फैली हुई मायूसी की तारीकियों के बावजूद मुझे यक़ीन है कि अभी आपकी सफों में वतन की मुहब्बत, ज़िन्दा ज़मीर और बाईमान लोगों की एक बड़ी तादाद मौजूद है। क्या हमने अपने आप को यह यक़ीन दिला दिया है कि हालात ठीक नहीं हो

सकते? क्या उन करोड़ों मज़लूम और बेकस इन्सानों को इस बेदर्दी और ख़ामोशी के साथ सियासी और मज़हबी भेड़ियों की भेंट चढ़ने दिया जाये?

क्या इस मुल्क में वाक़ई फिरक़ावारियत मौजूद है या चन्द दीन फरोश मुल्ला जो यहूदियों व ईसाइयों के उन उलमा की याद दिलाते हैं जो आयाते इलाही में अपनी नफ्सानी ख़्वाहिशात के तहत तबदीलियाँ कर लेते थे? क्या यह चन्द आलिम नुमा अफराद इसी राह पर गामज़न नहीं हैं जो एक बार फिर किसी चंगेज़ की आमद का बाइस बन जाये?

आप ज़िम्मेदार हैं, समझदार हैं, ख़ुदा ने आपको इख़्तियार और इक़्तेदार की ने'मत से भी नवाज़ा है। आप कब तक सियासी मसलेहतों का शिकार रहेंगे, कब तक मज़हबी ब्लेकमेलरों के ब्लेकमेल होते रहेंगे। शायद बाज़ औक़ात आपको अपनी मसनद और मन्सब की ख़ातिर भी कुछ ख़िलाफे दीन और ख़िलाफे ज़मीर काम अन्जाम देना पड़ते होंगे। लेकिन सोचिये अगर ख़ुदा नख़्वास्ता इस मुल्क ही को कुछ हो गया तो कहाँ आपका इक़्तेदार और कहाँ आपकी मस्नद!

क्या हमारे मुल्क में वतन से मुहब्बत करने वाले और बाईमान अफराद नहीं रहे, या आप को नज़र नहीं आते? यही ग़रीब लोग जिनकी अमान उनसे छीन ली गयी है, जो ख़ौफ व दहशत की हालत में ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर हैं, जिनको कभी सियासत के नाम पर और कभी मज़हब के नाम पर तबाही और बर्बादी से दोचार किया जा रहा है, यही पाकिस्तान की ताक़त हैं, यही इस्लाम का सरमाया हैं।

मस्जिदों व इमामबारगाहों और दूसरे मज़हबी इज्तेमाआत में क़त्लेआम करने वालों का इस्लाम से क्या ताल्लुक़ हो सकता है? कुर्आन करीम पर गोलियाँ बरसाकर उसे छलनी करने वालों का दीन से क्या रिश्ता? यह वह लोग हैं जिनके नाम तो इस्लामी हैं मगर यह कुफ्फार व मुशरिकीन के वह ख़रीदे हुए ग़ुलाम हैं जिन्हें इस मुल्क की तबाही के लिये इस्तेमाल किया जा रहा है।

आपको इनका ख़ौफ है लेकिन क्या ख़ुदाए बुज़ुर्ग व बरतर की बारगाह में हाज़िर होकर जवाब देने का कोई ख़ौफ नहीं? आप इन ब्लेकमेलरों के हाथों ब्लेकमेल होने के बजाय ख़ुदा पर और उन

मज़लूम लोगों पर भरोसा कीजिये, जब आप अपनी अवाम को एतेमाद देंगे, उनसे मुहब्बत करेंगे, उन्हें अमन व अमान देंगे, उनकी हिफाज़त का हक़ अदा करेंगे तो यही ग़रीब व लाचार लोग एक ऐसी कुव्वत में तबदील हो जायेंगे जो पस्माँदह और ज़वाल पज़ीर क़ौमों को बामे उरूज (ऊँचाई की मंज़िल) तक पहुँचा देते हैं।

ख़ुद अपनी सफों की सफाई कीजिये, ग़ौर कीजिये, देखिये, आपको नज़र आ जायेगा कि इन सियासी और मज़हबी ब्लेकमेलरों की सरपरस्ती आप ही की तरफ से हो रही है। आप ही के कुछ इदारे अपने वक़्ती मफादात के पेशेनज़र ऐसे गिरोहों को तश्कील देते हैं और बाद में यही छोटे–छोटे गिरोह एक बड़ी और मुनज़्ज़म कुव्वत में तबदील हो जाते हैं। जो लोग मफादात की ख़ातिर आपके लिये इस्तेमाल हो सकते हैं वह ''मूसाद'' और सी0आई0ए0 के लिये भी इस्तेमाल हो सकते हैं और हो रहे हैं।

आपके सामने है कि वह हुक्मरान भी न रहे जिन्होंने माज़ी में अपने इक़तेदार को तूल देने की ख़ातिर इन गिरोहों की बुनियाद रखी थी। वह हुक्मरान

चले गये लेकिन अपने साथ यह जारी रहने वाला अज़ाब भी ले गये जब तक यह क़त्ल व ग़ारतगरी होती रहेगी उनके नाम–ए–आमाल सियाह तर होते जायेंगे।

आप भी आज मसनद पर हैं, कल नहीं रहेंगे। आज आप फैसला कर सकते हैं क्योंकि इख़्तियार और इक़्तेदार आपके हाथ में है, कल जब इक़्तेदार नहीं होगा तो सिर्फ हाथ मलेंगे। एक बात और याद रखिये तारीख़ बहुत ज़ालिम है, यह किसी को माफ नहीं करती, आप चले जायेंगे, मगर आपका ज़िक्र रह जायेगा, यह फैसला करना आपका काम है कि तारीख़ में आप का ज़िक्र किन लफ़्ज़ों में बाक़ी रहे।

ख़ूब सोंच समझकर फैसला कीजिये। अपने फैसलों में ख़ुदा से मदद तलब कीजिये इस मुल्क व मिल्लत के सच्चे मुहाफिज़ बन जाइये। राह बहुत मुशकिल और ख़तरनाक है मगर जिसने ख़ुदा से मदद तलब की, ख़ुदा उसका हामी व नासिर रहा। हम माज़ी बईद में (बहुत पीछे) क्यों जायें अभी जो सदी ख़त्म हुई तो वक़्त की सबसे बडी साम्राजी

ताक़त को इसके सामने घुटने टेकने पड़े। हम तो फिर भी उम्मते मुहम्मदी है, हम चाहें तो सिर्फ अपनी ही नहीं बल्कि सारे आलमे इस्लाम की तक़दीर बदल सकते हैं, बात सिर्फ खुदा पर यक़ीन और एतमाद की है।

जिन शख़सियतों और ज़िम्मेदारों के लिये मैंने यह ख़त तहरीर किया है मुझे गुमान है कि शायद यह तहरीर उन तक पहुँच ही न सके, लेकिन इस उम्मीद पर कि :—

दिल से जो आह निकलती है असर रखती है
पर नहीं, ताक़ते परवाज़ मगर रखती है

खुदा इस मुल्के अज़ीज़ पाकिस्तान की हिफाज़त फरमाये और हम सब को दीने मुबीन इस्लाम का सच्चा ख़िदमतगार क़रार दे। आमीन!

वमातौफ़ीक़ी इल्ला बिल्लाह

अहक़रुल इबाद

हसन ज़फ़र नक़वी

□□□

इस्लाम और सेकुलरिज़्म

रोज़नामा 'जंग' कराची की 12 दिसम्बर की इशाअत में मोहतरम और फाज़िल बरादर सैय्यद ताहिर फैसल का मज़मून ''सेकुलरिज़्म और पाकिस्तान'' के उनवान (Topic) से नज़र से गुज़रा, जो कनविनर ख़ालिद यूनुस साहब के मज़मून बउनवान ''सेकुलरिज़्म और इसका इरतेक़ा'' के जवाब में तहरीर किया गया है। दोनों तहरीरें मैंने बग़ौर मुताला की। लेकिन दो बातें दोनों में एक पायीं। पहली बात यह कि दोनों ने सामने की हक़ीक़तों को नज़र अन्दाज़ करने की कोशिश की है, दूसरी बात यह कि दोनों मुआशरती दर्द भी रखते हैं और इन्सानियत के दुखों का इलाज भी चाहते हैं।

सबसे पहले मैं यह बात वाज़ेह कर देना चाहता

हूँ कि मैं सेकोलरइज़्म समेत किसी भी मग़रिबी इस्तेलाही 'इज़्म' को न सिर्फ यह कि पाकिस्तान के लिये बल्कि तीसरी दुनिया के किसी भी मुल्क के लिये नजात दिलाने वाला नहीं समझता, सेकोलरइज़्म दर अस्ल एक ख़यालाी इस्पारटा है। अमली (Practical) दुनिया में इसका कभी भी और कहीं भी वजूद नहीं रहा है जिसकी दो बड़ी मिसालें एक इस्लामी और एक ग़ैर इस्लामी सरज़मीन यानी तुर्की और भारत की सूरत में हमारे सामने मौजूद हैं। इस पर रोशनी डालने की बिलकुल ज़रूरत नहीं है कि दोनों ही समाज सेकुलरिज़्म के चक्कर में अपनी पहचान खो चुके हैं; और बरसहा बरस से बोहरान का शिकार हैं। ख़ास तौर पर भारत में हम देख रहे हैं कि इनका हुकूमती मीडिया कितना ही शोर मचाये मगर यह बात अब सारी दुनिया के सामने वाज़ेह हो चुकी है कि एक इन्तिहाई पस्त और मुतअस्सब ज़हेनियत पूरे हिन्दुस्तानी समाज को अपने हिसार में जकड़ चुकी है। जिसके अस्रात हमें वहाँ आए दिन हालात व वाक़ेआत में नज़र आ जाते हैं।

अब हम आते हैं तस्वीर के दूसरे रुख़ की तरफ

जो बहुत ही हस्सास (Senstive) और नाज़ुक रंग लिये हुए है। और जिसकी तरफ सिर्फ एक ताहिर फैसल शाह साहब ही नहीं बल्कि हर सच्चा मुसलमान और अक़्ल वाला मुसलसल इशारे करता रहता है। यानि एक इस्लामी सोसाइटी! जो समाजी इन्साफ पर मबनी हो, जियो और जीने दो की पालीसी की हामिल हो, ग़रीबों और नादारों की बिला तफ़रीक़े मज़हब व मकतब, मल्जा व मावा (नजात व पनाह देने वाली) हो। ग़रज़ यह कि इन तमाम ख़ुसूसियात की हामिल हो जो ख़ुसूसियात कुर्आन व सुन्नत की रोश्नी में तहरीर और तक़रीर के दौरान सामने लायी जाती हैं। हमें न तो इस नारे से इख़्तेलाफ है कि समाज में इस्लामी क़ानून राएज होने चाहियें और न ही इस बात पर एतेराज़ है कि साम्राजी तसल्लुत से आज़ादी ही हक़ीक़ी आज़ादी और इस्तेक़लाल है। लेकिन सावल यह है कि नारा तो सच्चा है और हक़ीक़त पर मबनी भी है और ख़ूबसूरत भी है मगर क्या मौजूदा सूरते हाल में कोई गिरोह इस क़ाबिल है कि इस नारे को अमली सूरत दे?

मेरे फाज़िल दोस्त ताहिर शाह साहब ने अम्नो

अमान के हवाले तालिबान के दौरे हुकूमत की जो मिसाल दी है वह उनकी क़लबी वाबस्तगी, एहसासात और जज़्बात की तो मज़हर हो सकती है लेकिन हक़ाएक़ से कोसों दूर है। इन्तिहाई ठण्डे दिल से ग़ौर करने का मक़ाम है इस बात पर कि जो मौक़ा तालिबान को मिला था वह उन्होंने न सिर्फ यह कि बरबाद कर दिया बल्कि उनके अन्दाज़ और काम करने के तरीक़े ने दुनिया भर में चलने वाली इस्लामी तहरीकों को ज़बरदस्त धच्का लगाया, जिसके नुक़सानदेह असरात फिलस्तीन, कश्मीर, चेचेनिया और इराक़ तक के मुसलमानों पर पड़ रहे हैं। साम्राजी हौसलों की तकमील में इससे ज़ियादा नादानिस्ता (बेजानी बूझी हुई) मदद और क्या हो सकती है कि एक गिरोह की ग़लत तशरीहों ने रातों रात सारी दुनिया में मुसलमान मुजाहिदीन को जो अपने–अपने इलाक़ों में आज़ादी की लड़ाईयाँ लड़ रहे थे, दहशतगर्द क़रार दिलवा दिया। और अब यह सूरते हाल है कि सारी दुनिया में मुसलमानों पर बलाओं के पहाड़ टूट पड़े हैं और कोई उनकी मदद और हिमायत करने को तैयार नहीं है।

यक़ीनन तालिबान के दौर में अम्न रहा होगा। लेकिन सिर्फ उन लोगों के लिये जो या तो तालिबान के हामी थे या फिर उन्होंने तालिबान के सामने हाथियार डाल दिये थे। आप तालिबान के अम्न की बात करते हुए बैनुलअक़वामी (International) रिपोर्टस का हवाला देते वक़्त अक़वामे मुत्तहेदा (U.N.O.) ही की उन रिपोर्टस को क्यों फरामोश कर बैठते हैं जिनमें बामियान और मज़ारे शरीफ में तालिबान के हाथों हज़ारों बेगुनाह और निहत्थे अफ़राद औरतों और बच्चों के क़त्लेआम की तफसीलात दर्ज हैं। हमें अक़वामे मुत्तहेदा या किसी भी नाम निहाद बैनुलअक़वामी इन्सानी हुक़ूक़ की तनज़ीम की रिपोर्ट से कोई सरोकार नहीं है, मगर क्योंकि मेरे फाज़िल दोस्त ताहिर शाह साहब ने अक़वामे मुत्तहिदा की रिपोर्ट का हवाला दिया था तो मैंने भी वही हवाला दुहरा कर दिया, वरना ऐसी वीडियो फिलमों की तादाद हद से ज़ियादह है जिसमें बामियान और मज़ारे शरीफ में तालिबान के हाथों जो हौलनाक तबाही फैली है और क़त्लेआम हुआ है उसके मनाज़िर (Seenes) मौजूद हैं।

इस हवाले का मक़सद कभी यह न लिया जाये कि यह सब इस्लामी नारों की वजह से हुआ। बल्कि यह एक गिरोह की अपनी ग़लत तशरीहों का नतीजा था। यहाँ मैं एक बात का और इज़ाफा करना चाहूँगा कि इस्लामी क़ानूनों की गलत तशरीहों के नतीजे सिर्फ अफग़ानिस्तान तक ही महदूद न थे बल्कि यह बात हमारे मुल्क का बच्चा–बच्चा जानता है कि हमारे मुल्के अज़ीज़ पाकिस्तान में गुज़श्ता चन्द सालों में मज़हब के नाम पर जो क़त्ल व ग़ारतगरी हुई और मुख़तलिफ मकातिबे फिक्र के बेशुमार क़ीमती अफराद जो इस मुल्क का असासा (Asset) थे ज़मानए जाहिलियत के तास्सुबात की भेंट चढ़ गये, इसमें सरज़मीने अफग़ानिस्तान और वहाँ के हालात का कितना अमल दखल था और अफग़ानिस्तान में उस ज़माने की तालिबान हुकूमत ने उन अनासिर की बहरहाल किसी न किसी अन्दाज़ में सरपरस्ती और हौसला अफज़ाई ज़रूरी की।

यहाँ मेरा मक़सद किसी की दिलआज़ारी नहीं है इसलिये बस इतना इशारा ही काफी है, जो कर दिया। फिलहाल जो बात पेशेनज़र है वह यह है कि

क्या मौजूदा मज़हबी जुनूनी कैफ़ियत में (अगरचे इन जुनूनी अफ़राद की तादाद कम ही क्यों न हो) इस बात का इम्कान मौजूद है या कोई ऐसी जमाअत मौजूद है जो मुल्क में पूरी तरह से और पूरी कुव्वत से और तमाम मकातिबे फिक्र के लिये क़ाबिले कुबूल इस्लामी निज़ाम लागू कर सके? ख़ुदानख़्वास्ता, मेरा हरगिज़ यह मतलब नहीं है कि ऐसा नामुमकिन है। रोना तो इसी बात का है कि एक सादा, सहल, इन्सानदोस्त और इन्साफ पर मबनी मज़हब की जो शक्ल हमारे नामनिहाद इस्लाम के ठेकेदारों ने बिगाड़ दी है वह कैसे संवारी जाए? इस्लाम के हसीन और ख़ूबसूरत चेहरे को दुनिया के सामने किस तरह से पेश किया जाये?

आप हालिया इन्तिख़ाबात की मिसाल ले लीजिये कि हमारी मज़हबी जमाअतों ने किस तरह से लोगों के अमरीका मुख़ालिफ जज़्बात का 'इस्तेहसाल' (Exploit) किया। पूरे इन्तिख़ाबात के दौरान मज़हबी जमाअतों का नारा ही यही था कि वह पाकिस्तान से ग़ैरमुल्की अड्डों का ख़ातमा करेंगे, इस्लामी निज़ाम नाफिज़ करेंगे और वाज़ेह तौर पर सेकुलर और

डेमोक्रेट जमाअतों के मुक़ाबले में इनका मोक़िफ़ बिलकुल अलाहेदह था। इन मज़हबी जमाअतों ने लोगों में मौजूद अमरीका के ख़िलाफ नफरत को इन्तिख़ाबी हरबे के तौर पर इस्तेअ्माल किया। लेकिन इन्तिख़ाबात गुज़रते ही उनकी सारी नज़रियाती इमारत धड़ाम से गिर पड़ी और जूँ ही उन्हें यह अन्दाज़ा हुआ कि हुकूमत हासिल करने के लिये अमरीका का अर्शीवाद ज़रूरी है, इन मज़हबी रहनुमाओं ने भी अपने नारों को बदल दिया और बयानात भी बदल दिये और जिस मौक़िफ पर लोगों ने उन्हें वोट दिये थे उस मौक़िफ को छोड़ दिया और सिर्फ और सिर्फ हुकूमत हासिल करने के लिये हर क़िस्म की सेकुलर, डेमोक्रेट और इलाक़ाई नज़रियात की हामिल जमाअतों से इत्तेहाद बनाने भी शुरु कर दिये और उनके साथ हुकूमत में शेयर करना भी शुरु कर दिया, जिसका मतलब ही यह है कि वह मग़रिबी दुनिया को यह इशारा देना चाहते हैं कि उनका हदफ पाकिस्तान में ऐसे इस्लामी निज़ाम का निफाज़ नहीं है जो मग़रिबी दुनिया के मफाद में न हो बल्कि वह इसे सिर्फ एक इन्तेख़ाबी और सियासी नारे के तौर पर इस्तेमाल कर रहे हैं।

ऐसे मुनाफिक़ाना किरदार के हामिल रहनुमाओं की मौजूदगी में इस्लामी क़वानीन के निफाज़ का नारा इस्लाम और मुसलमानों के साथ महज़ एक मज़ाक़ है। हाँ यह ज़रूर हो सकता है कि जनरल ज़ियाउल हक़ के दौर की तरह एक ही वक़्त में मुल्क में कई–कई निज़ाम नाफिज़ कर दिये जायें। आख़िर में मैं इतना ज़रूर अर्ज़ करूँगा अपने भाई ताहिर फैसल शाह की ख़िदमत में कि मायूस होने की ज़रूरत नहीं है, इस मुल्क में लाखों बल्कि करोड़ों मुसलमान आपकी तरह इस्लाम का दर्द रखते हैं, इस मुख़लिस कुव्वत को जमा करने की ज़रूरत है और मुनाफिक़ रहनुमाओं से नजात हासिल करने की वरना इन रहनुमाओं के क़ौल व फेल का टकराव दिन बदिन लोगों को इस्लामी तहरीकों से दूर और सेकुलर ताक़तों के नज़दीक करता चला जायेगा।

हमारे इन रहनुमाओं को यह बात समझ लेना चाहिये कि साम्राज, साम्राज होता है उससे दोस्ती का कोई इम्कान नहीं होता उसके मुक़ाबले में ज़रा भी कमज़ोरी और नर्मी का मुज़ाहेरा नहीं करना चाहिये क्योंकि यह नर्मी और कमज़ोरी साम्राज को

मज़ीद ताक़त फराहम करती है। साम्राजी तसल्लुत से आज़ादी का रास्ता असेम्बलियों से नहीं बल्कि जिन गली कूचों में अल्लाह की वह मख़लूक़ रहती है जो साम्राजी जुल्म व सितम का शिकार है वहाँ से गुज़रता है, यही वह सबसे बड़ी इंक़िलाबी कुव्वत है जिसकी नजात की ख़ातिर अम्बिया को मबउस किया गया और यही वह कुव्वत है जिसने हक़ीक़ी इस्लाम की दावत पर लब्बैक कहते हुए क़ैसर व किसरा के ऐवानों में लरज़ा बरपा कर दिया था।

वमाअलैना इल्ललबलाग़

हसन ज़फ़र नक़वी

कराची

□□□

जिहादे फातिमा अलैहस्सलाम

यह मज़मून अभी हाल में लेखक ने अपने भारत के क़याम के ज़माने में तहरीर फरमाया, यह भी उसी सिलसिले से जुड़ा हुआ है जो 'निशाने राह' का निशाना है। इसलिए इसे भी यहाँ शामिल किया गया है। (इदारा)

दुख़्तरे रसूल (स0) हज़रत फातिमा ज़हरा (स0) का ज़िक्र आते ही एक ऐसी हस्ती का तसव्वुर ज़ेहन में उभरता है जिसकी सारी ज़िन्दगी ग़म उठाते, मसाएब झेलते गुज़री हो। ढाई तीन साल के सिन में शे'बे अबी तालिब की सख़्तियाँ, कमसिनी में मक्का वालों के हाथों अपने बाप को ईज़ाएँ पहुचते देखना, मूनिस (मददगार) व ग़मगुसार माँ की जुदाई, चाहने वाले दादा अबुतालिब (अ0) का बिछड़ना, हिजरत

का सदमा, मदीने की मुश्किल ज़िन्दगी; लेकिन इन तमाम मुशकिलों में सबसे बड़ा सहारा खुद पैग़म्बरे अकरम (स0) की ज़ाते गिरामी थी, पैग़म्बर की मौजूदगी में शहज़ादिये कौनैन (स0) हर सख़्ती को मुस्कुराकर गुज़ारती चली जा रही थीं। लेकिन बाप की जुदाई के बाद सिर्फ 75 या 95 दिन इतने सख़्त गुज़रे कि मासूमा (स0) ने इन दिनों को बदतरीन और सख़्ततरीन दिनों से तश्बीह दी है। यह है वह मुसलसल मसाएब से पुर ज़िन्दगी की तरफ इशारा कि जिसकी वजह से बीबी का नाम आते ही आँखों में नमी का आ जाना बाइसे तअज्जुब नहीं होता।

लेकिन हम यहाँ एक और अन्दाज़ में गुफ्तगू करना चाहते हैं। और वह है मासूम–ए–कौनैन की शुजाअत का वह बाब कि अगर हम थोड़ा सा ग़ौर करें तो हमें यह बात समझ में आ जायेगी कि मौलाए कायनात अली इब्ने अबी तालिब (अ0) के सामने मरहब व अन्तर, और ख़ैबर व ख़न्दक़ जिस अन्दाज़ में आये आप (अ0) ने उन्हें सर किया। लेकिन यही ख़ैबर व ख़न्दक़ जब हैदरे

कर्रार (अ0) की ज़ौजा के सामने दूसरे अन्दाज़ में आये तो आपने उन्हें किस अन्दाज़ में ज़ेर किया। यह समझना बहुत ज़रूरी है आख़िर क्या बात है कि ख़ुदा का रसूल (स0) अपनी बेटी को ''उम्मु अबीहा'' (अपने बाप की माँ) का ख़िताब दे रहा है। अपने जिस्म का टुक्ड़ा क़रार दे रहा है, उसकी रिज़ा (मर्ज़ी) को अल्लाह की रिज़ा और उसके ग़ज़ब को अल्लाह का ग़ज़ब क़रार दे रहा है। ख़ुदा का रसूल (स0) जानता है कि उसकी बेटी कोई आम ख़ातून नहीं है बल्कि वह एक मुजाहेदा है ऐसी मुजाहेदा जिसने अपने बाबा की इंक़िलाबी तहरीक को बहुत नज़दीक से देखा है। वह देख रही है कि जब उसका बाबा मक्के के जाहिलों को हक़ की तरफ आने की दावत देता है तो वह उसे कैसी–कैसी अज़िय्यतें देते हैं। कभी ऐसा भी हुआ कि उन दुश्मनाने दीन ने पैग़म्बरे अकरम (स0) के जिस्मे अतहर पर कूड़ा फेंका यहाँ तक कि ऊँट की ओझड़ी (नअूज़ु बिल्लाह यानि अल्लाह की पनाह) तक डाल दी। और यह छोटी सी बच्ची अपने बाबा की मदद करती है। न

सिर्फ यह कि पैग़म्बर (स0) के जिस्म से इस गन्दगी को दूर करती है बल्कि घर वापस आकर अपने दादा जनाबे अबुतालिब से इन कुफ्फार की शिकायत करती है जिसके नतीजे में हज़रत अबुतालिब (अ0) अपने बेटों, भतीजों, और दीगर हाशमी जवानों के साथ उन कुफ्फार पर धावा बोलते हैं और अबुजहल जैसे दुश्मनाने रसूल (स0) को पटख़कर वही ग़लाज़त उसके चेहरे पर मल देते हैं।

कमसिनी ही में इस बच्ची ने अपने आपको आने वाले हालात के लिये तैय्यार कर लिया था। कुदरत ने इस बच्ची के हमसर (वर) के तौर पर अली (अ0) का इन्तिख़ाब इसलिए किया था कि मर्दों में भी बहादुर अली (अ0) से बेहतर कोई न था और औरतों में फातिमा (स0) जैसी बहादुर बीबी कोई न थी। यह फातिमा ज़हरा (स0) की ज़ात है कि अगर यह न होतीं तो अहलेबैते रसूल (स0) की पहचान कराने वाला कोई दूसरा न हो सकता था। ''हुम फातिमतु व अबूहा व बअ्लुहा वबनूहा'' का

जुमला बता रहा है कि फातिमा (स0) के सिवा जिससे से भी तआर्रुफ कराया जाता ग़ैर के दाख़िले का इमकान मौजूद रहता है। यही वह हस्ती है जो रिसालत, विलायत और इमामत को मुत्तहिद और महफूज़ कर देती है। जंगे ओहद में मैदान की तरफ जाना रसूल (स0) और अली (अ0) के ज़ख़्मों की देखभाल, उनकी तीमारदारी, कमसिनी में घरबार की ज़िम्मेदारी।

यह शरफ फातिमा का है कि उसकी औलाद, औलादे रसूल कहलायी, हसनैन (इमाम हसन व हुसैन) की सूरत में इस्लाम के मुहाफिज़ तैयार करना और ज़ैनब (स0) व उम्मे कुलसूम (स0) जैसी शेरदिल बेटियाँ जो फातिमा जैसी माँ की आग़ोश में परवरिश पाकर कूफे व शाम के बाज़ारों और दरबारों को अपने ख़ुतबों से हिलाकर रख देंगी।

अगर आप जनाबे ज़ैनब से पूछेंगे कि तक़रीर का यह बातिलशिकन (बातिल तोड़) अन्दाज़ किस से सीखा तो मुझे यक़ीन है कि जवाब यही मिलेगा कि यही बातिलशिकन अन्दाज़ दिखाने के लिये तो मेरी

माँ जेहरा (स0) मुझे ग़ासिब के दरबार में ले गयी थीं। और हक़ीक़त भी यही है कि दुख़्तरे रसूल (स0) के सामने आने वाले तमाम दौर थे। वरना माले दुनिया से अहलेबैत को क्या सरोकार हो सकता था। फिदक तो एक बहाना था। ज़ालिमों के जुल्म को आश्कार करने का। बक़ौले ''सरोश'' के :–

मैं तेरे कुर्बान शहज़ादी फिदक के क़िस्से में यह सियासत
जो तू न उठती तो उठ न सकता, ख़िलाफते ग़ासिबा का पर्दा

हसन (अ0), हुसैन (अ0), ज़ैनब (स0), उम्मे कुलसूम (अ0), जैसे मुजाहिद बच्चों को एक मुजाहिदा माँ की आग़ोश दरकार है। और कायनात में ऐसे बहादुर इसलिए नहीं मिल सकते कि किसी बच्चे को फातिमा (स0) जैसी माँ नहीं मिल सकती। फ़िदक का मारका था कि सिवाय ख़ातूने जन्नत (जनाबे ज़हरा स0) के इसे कोई सर न कर सकता था।

हालात व वाक़ेआत इस तरह के हो गये थे कि फातेहे ख़ैबर व ख़न्दक़ हैदरे कर्रार (अ0) अगर तलवार को बेनियाम करते तो इस्लाम टुक्ड़े–टुक्ड़े

हो जाता और अबुतालिब के बेटे पर हुकूमत की ख़ातिर खूँरेज़ी करने का इल्ज़ाम थोप दिया जाता। साज़िश करने वाले ख़ुश थे कि उन्होंने एक तरफ़ अली (अ0) से उसका हक़ छीन लिया है और दूसरी तरफ अली (अ0) को ज़ुलफ़िक़ार के इस्तेमाल से भी रोक दिया है। ऐसे में दुख़्तरे रसूल (स0) मैदाने अमल में आती हैं और अपने तारीख़ी ख़ुतबे से बातिल को अबदी रुस्वाई से दोचार करती हैं। अब क़यामत तक बातिल फिदक की रुस्वाई से पीछा छुड़ाना चाहता है मगर फिदक नंग व आर (ज़िल्लत व रुस्वाई) बनकर बातिल के साथ है। यही वह मस्जिदे नबवी में दिया जाने वाला ख़ुत्बा है जिस में शहज़ादि–ए–कौनैन दूसरी ख़्वातीन के अलावा अपनी मासूम बच्चियों ज़ैनब (स0) और उम्मे कुलसूम (स0) को भी हमराह लाई थीं ताकि दोनों शहज़ादियाँ माँ के लहजे को अच्छी तरह ज़ेहननशीन कर लें और दिल में उतार लें।

फातिमा ज़हरा (स0) की मुख़्तसर सी ज़ाहिरी ज़िन्दगी तवील जिहाद से मअमूर (भरी पुरी) है।

फातिमा (स0) के सिवा कोई ख़ातून नहीं जो रसूल (स0) के बाद आने वाले ज़माने में मुसलमान ख़्वातीन के लिये नमून–ए–अमल बन सके। दुख़्तरे रसूल (स0) ने बेटी बनकर, बीवी बनकर, और माँ बनकर हर किरदार को अज़मत अता कर दी। आप ने बता दिया कि औरत सिर्फ़ सिन्फे नाज़ुक ही नहीं बल्कि वक़्त पड़ने पर बातिल ताक़तों के लिये कारी ज़रब (सख़्त चोट पहुँचाने वाली) भी बन सकती है।

दुनिया का हर बड़ा इन्सान एक अज़ीम आग़ोश में परवरिश पाता है। इस मुख़्तसर सी गुफ्तगू को इस पैग़ाम पर ख़त्म करना चाहता हूँ कि ऐ फातिमा ज़हरा (स0) से मुहब्बत करने वाली बीबियों तुम बेटी हो, बहन हो, ज़ौजा या माँ हो, हर रिश्ता अज़ीम रिश्ता है यह तमाम रिश्ते मुहब्बतों के रिश्ते हैं। लेकिन वक़्त पड़ने पर इन तमाम मुहब्बतों को दीन पर कैसे निछावर किया जाता है यह दुख़्तरे रसूल (स0) से सीखो। आग़ोशे ज़हरा (स0) की तरबियत का असर कर्बला में देखो। किस तरह हुसैन (अ0) और ज़ैनब (स0) ने तमाम मुहब्बतों को नाना के दीन

पर निछावर कर दिया। खुदाया! हमें तैफीक़ दे कि हम मादरे हुसैन (अ0) के जिहाद को समझ सकें। और पैग़ाम सुन सकें।

ऐ जबीने मुस्तफा यह तो बता
कितने सिज्दों का सिला है फातिमा (स0)

□□□

लेखक की दूसरी किताबें

1- तारीख़े काबा (उर्दू)
2- इमामत और मुलूकियत (उर्दू)
3- इमामत एण्ड मुलूकियत (अंग्रेज़ी)
4- हुसैनियत
आज़माइश के मैदान में (उर्दू)
5- इरतेक़ाए इन्सानियत में
मासूमीन का किरदार (उर्दू)
6- अमीरे मुख़्तार (उर्दू)
7- अमीरे मुख़्तार (अंग्रेज़ी)
8- विलायते मासूमीन(अ0) (उर्दू)
9- निशाने राह (उर्दू)
10- दीन इंसान की फितरी ज़रूरत(उर्दू) (प्रेस में)
11- इस्लाम में ख़्वातीन के हुक़ूक़(उर्दू) (प्रेस में)